

फसल विशेषांक

मरू कृषि चयनिका

148



केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
जोधपुर



भाग बारह : फसल विशेषांक
(जनवरी से दिसम्बर, 2010)

संरक्षक एवं प्रकाशक

डॉ. एम.एम. रॉय
निदेशक

संपादक

श्रीमती मधुबाला चारण
सहायक निदेशक (राजभाषा)

प्रकाशन मंडल

डॉ. अमल कर	:	प्रधान वैज्ञानिक, सदस्य
डॉ. आर.के. कौल	:	प्रधान वैज्ञानिक, सदस्य
श्री संजय बोकोलिया	:	मुख्य प्रशासकीय अधिकारी, सदस्य
सुश्री अरुणा शर्मा	:	सहायक वित्त एवं लेखाधिकारी, सदस्य
श्रीमती मधुबाला चारण	:	सदस्य सचिव
डी.टी.पी.	:	संतोष कुमार मरवण
फोटोग्राफी	:	विजेन्द्र कुमार एवं देवाराम
मुद्रक	:	एवरग्रीन प्रिण्टर्स, जोधपुर

मरुस्थल का कार्याकल्प
काजरी का है संकल्प

प्रकाशन वर्ष : फरवरी, 2011

लेखकों के विचारों से संपादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।



डॉ. एम.एम. रॉय
निदेशक

हार्दिक स्वागत

काजरी को सफलता की नई मंजिल तक पहुँचाने का दृढ़ संकल्प लिये विख्यात आर्थिक वनस्पति वैज्ञानिक एवं विशेषज्ञ डॉ. मुरारी मोहन रॉय ने 20.02.2010 को काजरी के नये निदेशक के रूप में पदभार ग्रहण किया।

डॉ. रॉय का जन्म 1 दिसम्बर 1956 को हुआ। आपने विभिन्न पदों पर रहते हुए कृषि अनुसंधान में अपना वृहद योगदान दिया है। डॉ. रॉय भारतीय चारागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी में प्रधान वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत थे। डॉ. रॉय ने वन एवं कृषि वानिकी चारागाह एवं प्रबंधन, पादप पारिस्थितिकी, मृदा एवं वानिकी के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण शोध कार्य किये हैं।

डॉ. रॉय येल यूनिवर्सिटी न्यू हेवन अमेरिका में विनरॉक फेलो रहे तथा रिपब्लिक ऑफ हैटी अमेरिका में गोचर भू-प्रबंधन एवं कृषि वानिकी के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य किया। आपने अनेक शोध-पत्र, पुस्तकें, बुलेटिन प्रकाशित किये हैं जो कृषि अनुसंधानकर्ताओं, शोधकर्ताओं एवं विस्तार अधिकारियों हेतु मार्गदर्शी हैं।

अनुभवी डॉ. रॉय अत्यन्त सरल, सीधे एवं मृदुभाषी व्यक्तित्व के धनी हैं। आपको किसानों से अत्यन्त लगाव रहा है। डॉ. रॉय मरुक्षेत्र के कृषकों की समस्याओं को प्राथमिकता देते हुए तत्सम्बन्धी अनुसंधान एवं तकनीकियों के प्रसार द्वारा उनकी सेवा हेतु तत्पर रहने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं।

कृषक प्रेमी डॉ. रॉय का मरु कृषि चयनिका परिवार हार्दिक स्वागत करता है एवं सफलता की शुभकामनाएँ करता है।

**मरु भूमि फूले-फले कृषक धर धन धान्यबढ़े।
आपकी मनोकामना चयनिका की शुभकामना।।**

निदेशक की कलम से

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत भरपूर प्राकृतिक संसाधनों तथा विविध जलवायु और पारिस्थितिकीय क्षेत्रों से समृद्ध राष्ट्र है। हमारे पास भूमि जल, वनस्पति, प्राणी समूह एवं सौर ऊर्जा जैसे प्रचुर प्राकृतिक संसाधन हैं परन्तु विभिन्न कारणों विशेषकर जनसंख्या दबाव के कारण भूमि तथा बायोमास की उत्पादकता का अवक्रमण हुआ है, उसमें कमी आई है।

बढ़ती आबादी की खाद्यान्न की मांग निरन्तर पूरा करने का मतलब है हर वर्ष कृषि उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि दर लगातार बनाये रखना। इसमें सन्देह नहीं कि कृषि अनुसंधान के क्षेत्र में नित् नवीन प्रगति हो रही है परन्तु उसका पूरा लाभ देश के किसानों तक नहीं पहुँच रहा है। वैज्ञानिक अनुसंधान परिणामों को खेत खलिहान, किसानों, ग्रामीण रोजगार और पशुधन की जरूरतों से जोड़ने के साथ-साथ दूरदराज के इलाकों तक नयी खेती की रोशनी फैलाना एक चुनौती है साथ ही खाद्यान्न भंडारण को सुरक्षित रखने की चुनौती भी सामने खड़ी है।

राजस्थान विकट प्राकृतिक परिस्थितिकी जन प्रदेश है कम व अनियमित वर्षा, अधिकतम उच्च व निम्न तापमान, निम्न मृदा उत्पादकता, उच्च वायु वेग, चल रेत के टीबें आदि। इन विकट परिस्थितियों में उपलब्ध संसाधनों का सर्वाधिक उचित प्रयोग कर किस प्रकार अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त किया जाय यह एक वैज्ञानिक चुनौती है जिसे काजरी वैज्ञानिकों ने बखूबी स्वीकार किया व मरुप्रदेश हेतु उपयोगी उन्नत तकनीकें विकसित की। इसी के परिणामस्वरूप आज काजरी रेगीस्तान पर अध्ययन करने वाली सबसे बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संस्थान है। काजरी का अन्तिम ध्येय उन्नत तकनीकें किसानों तक पहुँचाना है।

इसी प्रयास की कड़ी में संस्थान कृषि विज्ञान मेला, प्रशिक्षण कार्यक्रम, किसान दिवस, खेत दिवस आदि कार्यक्रम आयोजित करता है। संस्थान द्वारा पिछले 12 वर्षों से मरुकृषि चयनिका पत्रिका निकाली जा रही है जिसे अनुसंधान कर्मियों एवं किसानों के बीच बेहद लोकप्रियता मिली है। मरुकृषि चयनिका पत्रिका का "फसल विशेषांक" लेकर हम एक बार पुनः आपके समक्ष उपस्थित है। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि पूर्व की भाँति यह अंक भी किसानों हेतु बेहद उपयोगी सिद्ध होगा। पत्रिका के सम्बंध में आपके विचारों एवं टिप्पणियों का हमें बेहद इन्तजार रहेगा। आपके सहयोग से ही पत्रिका का प्रकाशन संभव है। अपने विचारों से हमें अवश्य अवगत करायें।

डॉ. एम.एम. रॉय

निदेशक, काजरी

संपादकीय :

मरुकृषि चयनिका पत्रिका का "फसल विशेषांक" लेकर हम एक बार पुनः आपके समक्ष उपस्थित है।

काजरी एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संस्थान है। काजरी द्वारा विकसित तकनीकें मरु प्रदेश के विकास एवं पारिस्थितिकी सुधार हेतु बहुत उपयोगी रही है। काजरी का अंतिम ध्येय विकसित तकनीकें किसानों, प्रचार-प्रसार एवं विकास अधिकारियों तक पहुँचा कर मरु प्रदेशवासियों के जीवन स्तर में सुधार लाना व आर्थिक विकास करना है। शुष्क बंजर पारिस्थिकी में किस प्रकार अधिकाधिक उत्पादन व संसाधनों का प्रबंधन किया जा सकता है, इस का तकनीकी ज्ञान कृषक तक पहुँचाने हेतु काजरी द्वारा समय-समय पर विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम, क्षेत्र दिवस, किसान मेलों, प्रसार साहित्य का प्रकाशन किया जाता है।

काजरी तकनीकें आज मरुधरा के गाँव-गाँव में देखी जा सकती है। काजरी द्वारा विकसित बेर की तकनीक व किस्मों ने खेती में आर्थिक परिदृश्य को बदला है। काजरी द्वारा विकसित ग्वार मोठ, बाजरा आदि फसलों की किस्में किसानों हेतु लाभदायक सिद्ध हुई। पत्रिका के "फसल विशेषांक" में विभिन्न फसलों उद्यानिकी फसलों की किस्म, रोग एवं बचाव के उपाय, मृदा संरक्षण आदि से सम्बंधित विषय-विशेषज्ञों के लेख सम्मिलित किये गये हैं।

मरु कृषि चयनिका किसानों एवं वैज्ञानिकों के बीच पिछले 12 वर्षों से कड़ी का काम कर रही है। आशा है कि पिछले अंकों की तरह यह अंक भी किसानों विकास अधिकारियों प्रसारकर्ताओं हेतु उपयोगी होगा। आपके सुझाव एवं टिप्पणियों की हमें सदैव प्रतीक्षा रहेगी। पाठकों के सहयोग एवं प्रेरणा से ही मरु कृषि चयनिका ने कृषि अनुसंधान पत्रिकाओं में अपना अलग स्थान बनाया है।

मधुबाला चारण

सम्पादक एवं
सहायक निदेशक (राजभाषा)

विषय सूची

क्र.सं.	विषय वस्तु	पृष्ठ सं.
1.	शुष्क क्षेत्रों के लिए बाजरा की उन्नत किस्में <i>विनोद कुमार मंगा, अरुण कुमार, भागीरथ राम एवं मनोहर सिंह सोलंकी</i>	1-3
2.	ग्वार की उन्नत खेती <i>ए. हेनरी एवं पी.के. रॉय</i>	4-12
3.	मरू क्षेत्र में मोठ की सफल खेती <i>डी. कुमार</i>	13-19
4.	गुजरात के कच्छ क्षेत्र में तिल की उन्नत एवं लाभदायक खेती <i>भागीरथ राम, देवी दयाल, विनोद कुमार मंगा, शम्शुदीन एम. एवं अरविन्द कुमार</i>	20-26
5.	शुष्क क्षेत्र के लिए उपयोगी उद्यानिकी फसलें <i>एस.के. शर्मा एवं आर.एस. सिंह</i>	27-33
6.	सिंचित शुष्क क्षेत्रों में गाजर की लाभकारी खेती <i>प्रदीप कुमार एवं पी.आर. मेघवाल</i>	34-38
7.	खजूर की व्यवसायिक खेती <i>पी.आर. मेघवाल एवं प्रदीप कुमार</i>	39-48
8.	पश्चिमी राजस्थान में अकालों का तुलनात्मक विवेचन <i>ए.एस. राव, सुरेन्द्र पूनियाँ एवं आर.एस. पुरोहित</i>	49-53
9.	मृदा की घटती उर्वरता के कारण एवं प्रबंधन <i>सोमा श्रीवास्तव</i>	54-57
10.	कृषि में सूक्ष्मजीवी कीटनाशियों का उपयोग <i>राकेश पाठक, एस.के. सिंह एवं अंजली पंचोली</i>	58-61
11.	गेहूँ की फसल को रोगों से कैसे बचायें <i>सतीश लोढ़ा एवं रीतू मावर</i>	62-64
12.	विलुप्त प्रायः पादप प्रजाति सरगुड़ा का संरक्षण <i>चन्दन सिंह पुरोहित, रविकिरण कुल्लोली एवं सुरेश कुमार</i>	65-67
13.	जीरा सफाई एवं श्रेणीकरण मशीन का विकास <i>पुरुषोत्तम शर्मा, पी.के. मालवीय, हरपाल सिंह एवं दिनेश मिश्रा</i>	68-72
14.	कश्मीर की शीतोष्ण परिस्थितियों में रेशम उत्पादन के लिए मृदा और खनिजों का प्रबंधन <i>एम.एस. राठौड, वाय. श्रीनिवासुलु, आर. कौर, अनिल धर एवं एम.ए. खान</i>	73-77
15.	काजरी समाचार	78-80

शुष्क क्षेत्रों के लिए बाजरा की उन्नत किस्में

विनोद कुमार मंगा, अरुण कुमार, मागीरथ राम एवं मनोहर सिंह सोलंकी
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342 003

रूक्ष क्षेत्र में बाजरा खरीफ की एक प्रमुख फसल है। क्षेत्र के किसानों को अन्न के साथ पशुओं के लिए चारा भी मिलता है। कम वर्षा, कम उपजाऊ व लवणीय भूमि में भी बाजरा का उत्पादन संतोषजनक होता है। रूक्ष क्षेत्र के निवासियों के लिए अन्न के साथ चारा सुरक्षा प्रदान करने में यह फसल विशेष भूमिका निभाती है। यह क्षेत्र चूंकि कम वर्षा, अत्यधिक तापमान, लवणीय भूमि और सूखे की समस्या से जूझता रहता है, इसलिए यह आवश्यक है कि किसान ऐसी किस्मों का चयन करें जो इन विपरीत परिस्थितियों में भी अधिक उत्पादन दे सकें। साथ ही उनमें सूखे से बचाव के अलावा रोग रोधी गुणों का भी समावेश हो जो फसल को क्षति पहुँचाने वाले रोगों, विशेषतया डाऊनी मिल्ड्यू (तुलासिता) या जोगिया रोग से फसल की सुरक्षा कर सकें। किसानों की इन समस्याओं से अवगत पौध प्रजनन वैज्ञानिकों का यह सदैव प्रयास रहता है कि बाजरा की उत्पादकता बढ़ाने हेतु अनुसंधान कर ऐसी किस्मों को विकसित करें। सौभाग्य से वैज्ञानिकों के अनवरत व अथक प्रयत्नों से यह संभव हो सका है कि आज ऐसी उन्नत किस्में किसानों को उपलब्ध हैं जिनको उगा कर वह सूखे के साथ रोगों से भी दृढ़ता से मुकाबला कर सकता है। इस लेख में ऐसी ही उन्नत किस्मों के विषय में उल्लेख किया जा रहा है जो क्षेत्रीय किसानों की बाजरा उत्पादन संबंधी समस्याओं का बखूबी निवारण करने में सक्षम है।

बाजरा की उपयुक्त किस्में

संकर बाजरा: संकर बाजरा का बीज चुने हुए नर एवं मादा के संकरण से बनता है। संकर बाजरा का बीज हर वर्ष बाजार अथवा अन्य एंजेंसियों से लेकर उगाना चाहिए। इस क्षेत्र के लिए संकर बाजरा की किस्में निम्न प्रकार हैं।

एच.एच.बी 67-2: यह सबसे जल्दी पकने वाली संकर बाजरा की किस्म है। यह 60 से 65 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसलिए कम वर्षा वाले अत्यधिक शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयोगी है। यह किस्म अगेती व पछेती बुवाई के लिए उपयुक्त है। यह किस्म एच.एच.बी.-67 के मादा एवं नर अंशों में सुधार करके बनाई गयी है। जिससे यह सूखा सहने वाली एवं जोगिया रोग रोधी है। इसके पौधों की ऊँचाई 160-180 से.मी. तक होती है। इस किस्म की औसत उपज 2567 कि.ग्रा. प्रति

हैक्टैयर एवं सूखे चारे की उपज 5436 कि.ग्रा. प्रति हैक्टैयर है। यह किस्म अत्यधिक सूखा क्षेत्र में तो वरदान साबित हुई है। जल्दी पकने के कारण से यह किस्म अन्त में पड़ने वाले सूखे से पहले ही पक कर तैयार हो जाती है।

जी.एच.बी.—538: यह सूखा सहने वाली एवं जोगिया रोग रोधी किस्म है जो कि 70—75 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके पौधों की ऊँचाई 155 से.मी. एवं सिद्धों की लम्बाई 22—25 से.मी. है। दानों की औसत उपज 2450 कि.ग्रा. एवं सूखे चारे की उपज 4200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टैयर है। इसके दानों का रंग हल्के भूरे (ब्राउन) रंग के, एच.एच.वी.—67 एवं आई.सी.एम.एच.—356 से स्वादिष्ट एवं अच्छे होते हैं। इसके सिद्धे बाल रहित एवं दानों से गुंथे हुए होते हैं।

जी.ए.बी.—719 (एम.एच.—1236): यह 70—75 दिन में पकने वाली सूखा सहने वाली एवं जोगिया रोग रोधी किस्म है। इसके सिद्धे शंकु (कॉनीकल) आकार के एवं बालों वाले होते हैं, जिससे पक्षियों द्वारा नुकसान नहीं होता है। इसके दाने मध्यम आकार एवं सलेटी रंग के होते हैं। इसके पौधों की ऊँचाई 150—170 से.मी. होती है तथा सिद्धों की लम्बाई 20—22 से.मी. है। दानों की औसत उपज 2200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टैयर एवं सूखे चारे की उपज 4800 कि.ग्रा. प्रति हैक्टैयर है।

जी.एच.बी.—757 (एम.एच.—1328): यह भी 70—75 दिन में पकने वाली सूखा रोधी एवं जोगिया रोग रोधी किस्म है। इसके सिद्धे वन्तुलाकार (सिलेन्डरीकल) बाल रहित एवं दानों से गुंथे हुए होते हैं। दाने मोटे भूरे एवं स्लेटी रंग के होते हैं, पौधों की ऊँचाई 165—170 से.मी. एवं सिद्धे की लम्बाई 23—25 से.मी. होती है। दानों की औसत उपज 2300 कि.ग्रा. एवं सूखे चारे की उपज 4800 कि.ग्रा. प्रति हैक्टैयर होती है।

एच.एच.बी.—68: यह एक बहुत जल्दी पकने वाली सूखा सहने वाली किस्म है जो 65—70 दिन में पककर तैयार हो जाती है। यह किस्म अगेती एवं पछेती बुवाई के लिए उपयुक्त है। इस किस्म में पौधों की ऊँचाई 170—200 से.मी. एवं सिद्धे की लम्बाई 25 से.मी. होती है। सिद्धे प्रायः त्रिकोणीय बाल रहित होते हैं, दाने गोल एवं स्लेटी रंग के होते हैं। अनाज की औसत उपज 2250 कि.ग्रा. एवं सूखे चारे की उपज 5000 कि.ग्रा. प्रति हैक्टैयर होती है।

आई.सी.एम.एच.—356: यह एक सूखा सहने वाली एवं जोगिया रोग रोधी किस्म है जो कि 75—80 दिन में पककर तैयार होती है। इस किस्म में पौधों की ऊँचाई 170—180 से.मी. एवं सिद्धों की लम्बाई 20—22 से.मी. होती है। सिद्धे मोमबत्ती के आकार के एवं बाल रहित होते हैं। दाने मध्यम आकार के गोलाकार एवं स्लेटी रंग के होते हैं। अच्छे मौसम में इसमें काफी संख्या में फुटान होती है। इस किस्म की

औसत दानों की उपज 2450 कि.ग्रा. एवं सूखे चारे की पैदावार 4300 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर होती है।

संकुल बाजरा: संकुल किस्मों के बीज का उपयोग किसान लगातार 2-3 वर्षों तक कर सकते हैं। इसके लिए किसान वर्तमान फसल से ही आगामी फसल के लिए बीज रख सकते हैं।

सी.जेड.पी.-9802: यह संकुल किस्म 72-75 दिन में पककर तैयार होती है। यह सूखा सहने वाली एवं रोग रोधी किस्म है। इसके पौधों की ऊँचाई 180-200 से.मी. होती है। इसके सिद्धे वन्तुलाकार बाल रहित एवं 23-26 से.मी. लम्बाई के होते हैं। इसमें अनाज की औसत उपज 1300 कि.ग्रा. एवं सूखे चारे की उपज 3300 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर है, तना पतला होने के कारण इसका चारा उत्तम किस्म का माना जाता है और इस चारे को जानवर बहुत अधिक पसन्द करते हैं।

पूसा-443: यह एक जल्दी पकने वाली (70-75 दिन) सूखा सहने वाली एवं जागिया रोग रोधी किस्म है। इसके पौधों की ऊँचाई 150-200 से.मी. एवं सिद्धों की लम्बाई 23-28 से.मी. है। अनाज का औसत उत्पादन 1800 कि.ग्रा. एवं सूखे चारे का उत्पादन 4000 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर है।

पूसा-383: यह किस्म 72-75 दिन में पकने वाली सूखा सहने वाली रोधी एवं रोग रोधी किस्म है। इसके पौधों की ऊँचाई 180-200 से.मी. है। यह किस्म असिंचित, सिंचित, अगेती एवं पछेती बुवाई के लिए अनुकूल है। इसमें अनाज का औसत उत्पादन 2170 कि.ग्रा. एवं सूखे चारे का उत्पादन 5700 कि.ग्रा. है।



भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं और हिन्दी महानदी। हिन्दी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाने वाली भाषा है। हमें इस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिए। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हिन्दी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता।

- रविन्द्रनाथ ठाकुर

ग्वार की उन्नत खेती

ए. हेनरी एवं पी.के. रॉय

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342 003

ग्वार की फसल मुख्यतः देश के उत्तरी-पश्चिमी रेगिस्तानी प्रदेशों में 26-27 लाख हैक्टेयर में लगाई जाती है। जिसमें राजस्थान (21.9 लाख हैक्टेयर), गुजरात (2.4 लाख हैक्टेयर), हरियाणा (2.18 लाख हैक्टेयर), एवं पंजाब (0.3 लाख हैक्टेयर) मुख्य हैं। जहाँ यह मुख्य रूप से असिंचित क्षेत्रों में ही बोयी जाती है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में इसके अन्तर्गत करीब 26-27 लाख हैक्टेयर के क्षेत्रफल में बुवाई होती है। आंकड़ों के अनुसार दुनिया का तीन-चौथाई ग्वार का उत्पादन भारतवर्ष में होता है। भारतवर्ष में इसका उत्पादन 9 लाख टन प्रतिवर्ष होता है तथा उसका 62.0 प्रतिशत उत्पादन राजस्थान में ही होता है। पश्चिमी राजस्थान में इसका उत्पादन 4.6 लाख टन होता है। प्रदेश में इसकी सबसे ज्यादा बुवाई चुरु, बीकानेर, बाडमेर व जैसलमेर जिलों में होती है (2.41-3.31 लाख हैक्टेयर)। उत्पादकता के हिसाब से राजस्थान करीब 257 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर है व पश्चिमी राजस्थान में यह तकरीबन 220 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर है जो कि अन्य प्रदेशों की तुलना में सबसे कम है (490.765 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर)। भारतवर्ष में इसकी उत्पादकता 338 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर है।

उपयोग

ग्वार के दानों का मुख्यतः उपयोग पशु आहार के लिए होता है। जिसमें औसत 28 प्रतिशत प्रोटीन की मात्रा होती है। इसको सब्जी, चारे व हरी खाद के लिए भी उगाया जाता है।

औद्योगिक महत्व

ग्वार एक औद्योगिक महत्व की मरुस्थलीय फसल है ग्वार के बीजों में करीब 35 से 40 प्रतिशत तक एण्डोस्पर्म होता है जिसमें ग्लेक्टोमेनन नामक गोंद की मात्रा 80-85 प्रतिशत तक होती है जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार के उद्योगों में प्रचुरता से होता है, जैसे कि कपड़ा उद्योग, कागज उद्योग, बारूद उद्योग, तेल के कुओं की खुदाई के लिए, खाद्य पदार्थों (आईसक्रीम) में व भिन्न भिन्न प्रकार के पदार्थों के सेवन में।

भारतवर्ष में प्रतिवर्ष इसका निर्यात करीब 65 देशों को किया जाता है। जिससे प्रतिवर्ष करीब 1200 करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा अर्जित होती है। निर्यात के 50



शीघ्र पकने वाली शुष्क क्षेत्रों हेतु उपयुक्त बाजरा की संकर किस्म



अधिक उपज पोषक तत्व एवं गोंद युक्त ग्वार की उन्नत किस्म

प्रतिशत की मात्रा अमेरिका व जर्मनी को की जाती है। भारतवर्ष में ग्वार गम/स्पलिट का उत्पादन करने वाली तकरीबन 130 औद्योगिक इकाइयाँ राजस्थान, गुजरात, हरियाणा व महाराष्ट्र में स्थित हैं, जहाँ से करीब 1.89 लाख टन का ग्वार गम/गोंद का निर्यात किया जाता है। गोंद को निकाल लेने के बाद करीब 60 प्रतिशत ग्वार चूरी का उत्पाद प्राप्त होता है, जिसमें प्रोटीन की मात्रा करीब 40-42 प्रतिशत तक होती है जो कि पशुओं के लिए एक अतिउत्तम आहार होता है। दुनिया के करीब 80-82 प्रतिशत का ग्वार गम का निर्यात भारतीय कंपनियों के हाथ में है।

अखिल भारतीय समन्वित मरू दलहन परियोजना

ग्वार फसल के औद्योगिक महत्व को ध्यान में रखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, दिल्ली के तत्वाधान में पहली वार्षिक संगोष्ठी काजरी में सन् 1977 में आयोजित की गई, जिसमें ग्वार पर समन्वित अनुसंधान के कार्य की रूपरेखा तैयार कर निम्न प्रमुख ग्वार उगाने वाले प्रदेशों में क्रियान्वित की गई, जैसे कि राजस्थान, हरियाणा, गुजरात, पंजाब, उत्तर प्रदेश इत्यादि। जिसे बाद में वर्ष 1992 में अन्य दलहनी फसलों को जैसे कि मोठ, चंवला व कुल्थी को सम्मिलित कर मरू दलहन परियोजना का नाम दिया गया।

ग्वार की फसल लगाने की उन्नत विधियाँ

ग्वार की सफल फसल लेने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये।

उन्नत किस्मों का चयन:

सारणी 1: निम्नलिखित ग्वार की उन्नत किस्मों को विभिन्न प्रदेशों में लगाने की सिफारिश की जाती है

क्र. सं.	प्रदेश	किस्मों के नाम	पकने की अवधि	औसत उपज (कि.ग्रा./है.)	अनुकूल क्षेत्र	मुख्य गुण
1.	गुजरात	जी.जी.-1 (1987)	105-110	800-1100	गुजरात के वर्षा पर आधारित ग्वार क्षेत्र।	शाखित, फैलने वाली जीवाणु झुलसा बीमारी प्रतिरोधक।
		जी.जी.-2 (2005)	100-110	1100-1300	गुजरात के वर्षा पर आधारित ग्वार क्षेत्र।	जी जी.-1 से अधिक उत्पादन क्षमता।

क्र. सं.	प्रदेश	किस्मों के नाम	पकने की अवधि	औसत उपज (कि.ग्रा./है.)	अनुकूल क्षेत्र	मुख्य गुण
2.	हरियाणा	एच.जी.-258 (1987)	115-120	1800-2000	हरियाणा	यह एक देरी से पकने वाली शाखित किस्म है।
		एच.जी.-365 (1998)	90-95	1800-2000	हरियाणा	यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है, इसके पौधे शाखित होते हैं।
		एच.जी.-563 (2001)	90-95	1800-2000	हरियाणा	यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है, इसके पौधे शाखित होते हैं।
		एच.जी.-884	90-95	1400-1500	हरियाणा	यह एक मध्यम देरी से पकने वाली शाखित किस्म है।
3.	पंजाब	ए.जी.-111 / ए.जी.-111	90-95	1200-1500	पंजाब	यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है, इसके पौधे शाखित नहीं होते हैं।
		ग्वार-80	115-120	1800-2000	पंजाब	यह एक देरी से पकने वाली शाखित किस्म है,
4.	दिल्ली	सुविधा	90-95	1500-1800	दिल्ली	यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है, इसके पौधे शाखित होते हैं।
		नवीन	90-95	1500-1800	दिल्ली	यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है, इसके पौधे शाखित होते हैं।
		सोना	115-120	1600-1800	दिल्ली	यह एक देरी से पकने वाली शाखित किस्म है।
		पी.एल.जी.-85	100-110	1500-1800	दिल्ली	यह एक देरी से पकने वाली शाखित किस्म है,
5.	उत्तर प्रदेश	बुन्देल-1	115-120	1400-1600	झांसी	यह एक देरी से पकने वाली शाखित किस्म है, दाने व चारे दोनों के लिए उपयुक्त है।
		बुन्देल-2	115-120	1400-1600	झांसी	यह एक देरी से पकने वाली शाखित किस्म है, दाने व चारे दोनों के लिए उपयुक्त है।
6.	राजस्थान	आर.जी.सी.-1038 (करण)	100-105	1500-1600	राजस्थान	पौधे मध्यम ऊँचे, शाखित पत्तियों के किनारे खुरदरे, भ्रूण पोषण, 31-36%, प्रोटीन 28-30%, व गोंद 28-32%।
		आर.जी.सी.-1066 (लाठी)	97-98	1032-1451	राजस्थान	यह खरीफ व जायद दोनों के लिए उपयुक्त है। यह एक मध्यम ऊँची व कम शाखाओं वाली किस्म, इसके किनारे चिकने होते हैं।
		आर.जी.सी.-1055 (उदय)	96-108	1098-2881	राजस्थान	यह भी खरीफ व जायद दोनों के लिए उपयुक्त है। पत्तों के किनारे खुरदरे व पौधे शाखित होते हैं।

क्र. सं.	प्रदेश	किस्मों के नाम	पकने की अवधि	औसत उपज (कि.ग्रा./हे.)	अनुकूल क्षेत्र	मुख्य गुण
		आर.जी.सी.-112 (सूर्या)	92-93	1000-1200	राजस्थान	यह शीघ्र पकने वाली तथा अनेक शाखाओं वाली किस्म है। इसमें कीट व जीवाणु झुलसा रोग का प्रकोप भी कम होता है।
		आर.जी.सी.-1031 (क्रान्ति)	110-114	1055-1577	राजस्थान	इसके पौधे ऊँचे, तथा बहुशाखीय होते हैं सिंचित अवस्था में यह ज्यादा उपज व चारा देती है, इसमें बिमारियों व कीटों के प्रति मध्यम प्रतिरोधकता होती है।
		आर.जी.सी.-1017	92-99	1000-1400	राजस्थान	यह एक मध्यम, जल्दी पकने वाली किस्म है, पौधे मध्यम, छोटे व शाखित, पत्तियों के सिरे पर आरीनुमा कटाव होता है।
		आर.जी.सी.-1002	80-90	800-1200	राजस्थान	पौधे मध्यम छोटे व शाखित होते हैं व पत्तियों के सिरे आरीनुमा होते हैं।
		आर.जी.सी.-1003	90	800-1400	राजस्थान	यह एक मध्यम, जल्दी पकने वाली किस्म है, पौधे मध्यम, छोटे व शाखित होते हैं।
		आर.जी.सी.-936	85-90	800-1200	राजस्थान	यह एक कम अवधि में पकने वाली किस्म है, व इसके दाने हल्के गुलाबीपन लिये होते हैं। इसके पौधे झाड़ीनुमा व शाखित होते हैं।
		आर.जी.सी.-197	100-120	1000-1200	राजस्थान	यह एकल शाखित पौधे वाली किस्म है, इसमें गोद 33% तक होता है।
चारे की किस्में						
7.	हरियाणा	एच.एफ.जी.-156	125-130	3250-3250	हरियाणा	देरी से पकने वाली शाखित किस्म है, व इसकी पत्तियों के सिरे आरीनुमा होते हैं।
		एच.एफ.जी.-119	125-130	3000-3250	हरियाणा	देरी से पकने वाली शाखित किस्म है, व इसकी पत्तियों के सिरे आरीनुमा होते हैं।
सब्जियों की किस्में						
8.	दिल्ली	पूसा नवबहार	50-55 प्रथम तुड़ाई	4000-5000	समस्त प्रदेश	एकल शाखा वाली किस्म है। पत्ते चिकने व चौड़े होते हैं व फूल गुलाबी रंग के होते हैं।
9.	राजस्थान	एम.-83 (कंचन बहार)	42-45	6000-6500	राजस्थान	एकल शाखा वाली किस्म है। इसके पौधे ऊँचे, पत्तियाँ चौड़ी होती हैं, इसके फूल सफेद रंग के होते हैं।

खेत का चयन : ग्वार की खेती विभिन्न प्रकार की भूमि जैसे दुमट से रेतीली दुमट व रेतीली भूमि में की जा सकती है। जिसका पी.एच. का रेंज 7.5 से 8.0 तक हो। भूमि क्षारीय व खारी नहीं होनी चाहिए। जिस खेत में देर तक पानी जमा रहता है वह इसके लिए उपयुक्त नहीं है।

जलवायु: ग्वार की फसल में एक विशेष गुण होता है कि यह संसाधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग करती है इसको अधिकतर बरानी क्षेत्रों में लगाया जाता है। मरु क्षेत्रों में अनिश्चित एवं अनियमित वर्षा की वजह से समय से बुवाई एवं वांछित पौध संख्या की प्राप्ति में अवरोध खड़ा करती है। मरु क्षेत्रों में पहली वर्षा होने पर बाजरा की फसल को उगाया जाता है तथा उसके पश्चात् वर्षा होने पर इसको उगाने की प्रवृत्ति है। इसकी उत्पादन की क्षमता को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि भूमि में नमी रहते समय में बुवाई कर फसल का अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है सीमान्त एवं उप सीमान्त ग्वार क्षेत्रों की भूमि साधारणतया कम उपजाऊ होती है और उसमें नमी धारण करने की शक्ति कम होती है जिसके कारण अच्छी पैदावार प्राप्त नहीं होती है इसके लिए यह अतिआवश्यक है कि उचित जल व भूमि संरक्षण की विधियों को अपनाकर अच्छी पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

भूमि उपचार: जिन खेतों में सफेद लट का प्रकोप होता है, वहाँ फॉरेट 10 जी. या क्लोरो पाईरीफोस 10 जी. का 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई पूर्व कतारों में डाल दीजिए या हल के पीछे डालकर छिड़क दीजिए। बीज की बुवाई भी इन्ही कतारों में करनी चाहिए, इससे दीमक की भी रोकथाम होगी। जहाँ दीमक का प्रकोप हो वहाँ पर क्लोरो पाईरीफोस (1.5:) 20-25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में बुवाई से पूर्व अच्छी तरह मिला देना चाहिये।

बीजोपचार : बुवाई से पूर्व जीवाणु अंगमारी रोग की रोकथाम के लिए बीजों को 56 से.ग्रे. गर्म पानी में रख कर बोयें। बीजों को 150 पी.पी.एम. स्ट्रेप्टोसाईक्लिन से उपचारित करके बोने से इस बीमारी से बचाव किया जा सकता है। जड़गलन एवं ऊखटा रोग के बचाव हेतु बीजों को बुवाई पूर्व कार्बनडाजिन 50 डब्ल्यू पी. (2 ग्राम प्रति कि.ग्रा.) या विटावेक्स (0.2%) बॉविस्टिन 50 डब्ल्यू पी. (2 ग्राम प्रति कि.ग्रा.) या टॉपसिन एम.-70 (2 ग्राम प्रति कि.ग्रा.) से उपचारित करना चाहिये। बीजों को राईजोबियम कल्चर व फॉस्फोरस कल्चर से उपचारित कर फसल उत्पादन में वृद्धि प्राप्त करने में सहायक होती है, कल्चर से उपचारित बीजों को सूर्य की गर्मी व ताप से बचाव करना चाहिये।

राइजोबिया कल्चर से उपचार: ग्वार के बीजों को राइजोबिया कल्चर से उपचारित करके उगाने से अधिक फसल की पैदावार प्राप्त की जा सकती है। इसके उपचार के लिए एक हैक्टेयर में बोये जाने वाले बीजों को 1000 मि.ली. पानी को गर्म करके गुड़ की 250 ग्राम का घोल बनाकर ठण्डा होने पर इसमें 600 ग्राम कल्चर मिलायें। इस मिश्रण में बीजों को इस प्रकार मिलायें कि बीजों पर एक साथ इनकी परत चढ़ जाये। इन बीजों को छाया में सुखा कर यथाशीघ्र उगाने के लिए उपयोग में लावें।

फॉस्फेट विलेयक जीवाणु कल्चर से उपचार: एक हैक्टेयर के बीजों के उपचार के लिए एक लीटर पानी में 125 ग्राम गुड़ या 5/10 ग्राम गोंद का घोल बना कर 500 ग्राम कल्चर मिला लें। यदि गरम करके घोल बनाया जाता है तो उसे ठण्डा करने के पश्चात् कल्चर मिलाया जाये। इसमें बीजों को मिला कर छाया में सुखाकर बोने के लिए शीघ्र काम में लें। बीजों के उपचार में कवकनाशी या कीटनाशी का प्रयोग करना हो तो पहले कवकनाशी फिर कीटनाशी के बाद राइजोबियम कल्चर व अन्त में फॉस्फेट विलेयक जीवाणु खाद का प्रयोग करें। बुवाई का समय व बीजों की मात्रा : जुलाई के पहले सप्ताह से प्रथम पखवाड़े तक बुवाई कर देने पर ग्वार की भरपूर फसल ली जा सकती है, परन्तु इसकी बुवाई जुलाई के अन्तिम सप्ताह से अगस्त के पहले सप्ताह में करने पर भी इसकी अन्य दलहनी फसलों की अपेक्षाकृत अधिक पैदावार भी ली जा सकती है। समय पर बुवाई के लिए अकेली फसल हेतु 12-15 कि.ग्रा. बीज की मात्रा प्रति हैक्टेयर काफी रहती है, परन्तु देरी से बुवाई करने पर इसके बीजों की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। विभिन्न प्रकार की किस्मों के लिए कतारों की दूरी व पौधे से पौधे की दूरी निम्न प्रकार की होनी चाहिए। इसकी मिश्रित फसल के लिए 8-10 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर ही काफी होता है।

सारणी 2: ग्वार की विभिन्न किस्मों के लिए कतारों व पौधे से पौधे की दूरी (से.मी.)।

क्र. सं.	किस्म	कतारों की दूरी (से.मी.)	पौधों की दूरी (से.मी.)	पौधों की संख्या (लाख/है.)
1.	मध्यम देरी से या जल्दी पकने वाली (शाखाओं वाली किस्मों)	45	10-15	1.5 -2.2
2.	एकल शाखा वाली किस्म	30	10-15	2.2 -3.3

खाद/उर्वरक की मात्रा: खाद की मात्रा मृदा परीक्षण के अनुसार दी जानी चाहिये। साधारणतया किसान ग्वार की फसल में खाद नहीं देते हैं, किन्तु अधिक उपज लेने के लिए 15-20 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टेयर (33.3 से 44.4 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टेयर)

देना चाहिये। जिस भूमि में फॉस्फोरस की कमी हो वहाँ 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टेयर के हिसाब से देना चाहिए (185 से 250 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट प्रति हैक्टेयर)। इन खादों को जमीन में बुवाई के पूर्व करीब 8 से.मी. की गहराई में ड़िल करना चाहिए, इससे फसल को इन खादों का पूरा फायदा पहुँचता है। जिन जमीनों में जिन्क की कमी पायी जाती है वहाँ पर जिन्क सल्फेट की 25 कि.ग्रा. की मात्रा प्रति हैक्टेयर की दर से देने पर फसल के उत्पादन में बढ़ोत्तरी होती है। जिन्क सल्फेट के 0.5 प्रतिशत के घोल का पहला छिड़काव फसल की बुवाई के 25 दिन पश्चात् व दूसरा छिड़काव 45 दिन के पश्चात् करने से फसल की उपज में बढ़ोत्तरी ली जा सकती है। जिन क्षेत्रों में सल्फर की कमी पायी जाती है वहाँ पर सल्फर की 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से देने में फसल की उपजाऊ क्षमता बढ़ती है। ग्वार की बिजाई पूर्व थॉयोरिया के 0.05 प्रतिशत घोल में 4 घंटे अवशोषित कर सुखा कर बोयें तथा खड़ी फसल पर बुवाई के 25 व 45 दिनों पर थॉयोरिया का छिड़काव करना चाहिये। जिन्क सल्फेट, यूरिया और सिंगल सुपर फॉस्फेट के मिश्रण में मिलाकर भी बुवाई के समय दिया जा सकता है।

अर्न्तशस्य: रेगिस्तानी क्षेत्रों में किसान प्रायः ग्वार की विभिन्न फसलों के बीजों के साथ विभिन्न मात्रा में मिश्रित करके बुवाई करते हैं, जैसे कि तिल, मूंग, मोठ, बाजरा इत्यादि के साथ। अनुसन्धान के प्रयासों से यह पता चलता है कि ग्वार की दो कतारें 30-30 से.मी. की दूरी पर तथा ऐसे ही दो जोड़ी के बीच 70 से.मी. में कतार बाजरा बोने से व उसमें 15 कि.ग्रा. नत्रजन की मात्रा प्रति हैक्टेयर देने से ज्यादा मुनाफा कमाया जा सकता है। इसी प्रकार से 2 कतारें बाजरे की व दो कतारें ग्वार की फसल की अर्न्तशस्य करने से अधिक मुनाफा होता है।

खरपतवार नियन्त्रण व निराई-गुड़ाई: समय पर फसल में निराई-गुड़ाई करके फसल खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए। पहली निराई बुवाई के बाद 20-25 दिनों के अन्तराल में कर देनी चाहिए। किसान सामान्यतया ग्वार में खरपतवार नियन्त्रण के लिए रासायनिक पदार्थ का इस्तेमाल नहीं करते हैं, पर इसके लिए बॉसालिन या त्रेफॅलान नामक रसायन की सिफारिश की जाती है, इसके सक्रिय तत्व का 1.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर या छिड़काव बुवाई से पूर्व कर मिट्टी में अच्छी तरह मिला देने से खरपतवार नियन्त्रण में सहायता मिलती है।

पौध संरक्षण :

अ) प्रायः ग्वार की फसल में कीड़ों का प्रकोप कम होता है, परन्तु सफेद लट व दीमक का जहाँ प्रकोप है वहाँ वे फसल को नुकसान अवश्य पहुँचाते हैं। इनके

नियन्त्रण का विवरण भूमि उपचार के अन्तर्गत दिये गये सुझावों के अनुसार ही करना चाहिए।

ब) मोयला, सफेद मक्खी, हरा तैला, इनके निमंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू.एस.सी. या मिथाईल डिमेटोन 25 ई.सी. या डायमिथोएट 30 ई.सी. एक लीटर या फॉस्फोमिडॉन 85 डब्ल्यू.एस.सी. 250 मि.ली. या मैलाथियॉन 50 ई.सी. सवा लीटर या एण्डोसल्फान 4 प्रतिशान चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर का छिड़काव या भुरकाव करें।

स) बेक्टिरियल ब्लाईट (पत्तों पर काले धब्बे) — यह बीमारी पत्तियों में धब्बे व ब्लाईट दोनों रूप में शुरू होती है। इसमें धब्बे प्रायः पत्तियों के पिछले हिस्से में शिराओं के बीच में बनते हैं। यह धब्बे आपस में मिलकर भूरे रंग के दिखाई देते हैं। यह बीमारी पत्तियों से होती हुई तने में प्रवेश करती है व तने में यह लम्बी लम्बी काली रंग की धारियों के रूप में दिखाई देती है और इस बीमारी के बढ़ने पर पौधों के तने तड़कने शुरू हो जाते हैं और पौधे जमीन पर झुक जाते हैं व फसल को भी नुकसान पहुंचाते हैं। इसके रोकथाम के लिए निम्न उपचार किये जाते हैं।

- बीजों की बुवाई के पहले 10 मिनट तक गर्म पानी में 56° से.ग्रे. तक रखने से बीजों में इस बीमारी को खत्म किया जा सकता है।
- बुवाई के पहले बीजों को स्ट्रेप्टोसाईक्लिन (1 ग्राम प्रति कि.ग्रा.) व खड़ी फसल पर इसका प्रकोप दिखाई देने पर (30 ग्राम प्रति एकड़) + ब्लाईटोक्स-50 (200 ग्राम प्रति एकड़) का छिड़काव करना चाहिए। और जरूरत पड़ने पर 15 दिनों की अवधि पर दुसरा छिड़काव करना चाहिए।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर जिन्क सल्फेट (0.25 प्रतिशत) व अजाडिरेक्टिन (1.5 मि.ली. प्रति लीटर) के घोल का दो बार 15 दिनों के अन्तराल से छिड़काव करने पर इसकी रोकथाम में मदद मिलती है या फसल पर नीम के सीड करनल के पाऊंडर के सत का (5 प्रतिशत) घोल का छिड़काव तीन बार 15 दिनों के अन्तराल पर करने से भी इसकी रोकथाम की जा सकती है।

द) अल्टरनेरिया ब्लाईट (अंगमारी) — यह ग्वार के पत्तों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे के रूप में दिखाई देती है। जो बाद में हल्के सलेटी रंग तथा गहरे भूरे रंग में बदल जाते हैं बीमारी के बढ़ने पर यह धब्बे मिलकर पत्ती के काफी भाग पर छा जाते हैं व सूखे पीले होकर पत्तियाँ पौधे से झड़ जाती हैं। अगर यह बीमारी पौधों के बढ़वार के समय लगती है तो उस पौधों में फूल नहीं आते हैं व फसल

की पैदावार इससे कौफी कम हो जाती है। इसकी रोकथाम के लिए डाईथेन जेड-78 (0.2 प्रतिशत) और कूप्रामोर (0.3 प्रतिशत) के घोल के दो छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर अवश्य करना चाहिये।

ई) चूर्ण फफूँद (छाछिया/पाउडरी मिल्ड्यू) - इसके प्रकोप से पत्तियों पर सफेद रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 25 किलो गंधक चूर्ण अथवा कैराथिऑन ई.सी. का 0.01 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिये।

फ) ड्राई रूट रोट (जड़ों का सड़न रोग)

- इसकी रोकथाम में लिए बीजों को कार्बेन्डाजीन 50 डब्ल्यू.पी. (2 ग्राम प्रति कि.ग्रा.)/बॉविस्टिन (2 ग्राम प्रति कि.ग्रा.) या टॉपसीन एम.-70 (2 ग्राम प्रति कि.ग्रा.) की दर से उपचारित करना चाहिये।
- इसकी रोकथाम में लिए खेत की भूमि में ट्राईकोडर्मा हॉरजिनम/(1.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर) नामक बायोजेन्ट उपयुक्त पाया गया है। इसके साथ ही मॉनसर्न (3 मि.ली प्रति कि.ग्रा.) + कार्बेन्डाजीन (2 ग्राम प्रति कि.ग्रा.) से उपचारित कर बुवाई करने से इसकी रोकथाम की जा सकती है।

कटाई व लटाई: कटाई ग्वार की फसल के पत्ते प्रायः पकने के समय झड़ जाते हैं तथा जब 90 प्रतिशत फलियां पक जाये तो फसल को काट लेना चाहिये। फसल के पकने पर काटने में देरी नहीं करनी चाहिये। अन्यथा फलियों के फटने व बीजों के बिखरने का डर रहता है। फसल को सुखा कर लटाई करें। बरसात होने पर या फसल के अच्छी तरह नहीं सूखने पर दाना काला पड़ जाता है।



है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी-भरी।

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी।।

- मैथिलीशरण गुप्त

मरु क्षेत्र में मोठ की सफल खेती

डी. कुमार*

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342 003

अपने आनुवांशिक गुणों, शुष्कता के प्रति प्रतिरोधक क्षमता, कम (100 से 250 मि.मी.) व अनियमित (30 से 40 दिन के अंतर पर) वर्षा व तेज गर्मी (>35° सें.) में भी अच्छा उत्पादन देने की क्षमता के लिए मोठ की फसल अच्छी तरह से जानी जाती है। पोषक तत्वों की कमी वाली, ऊँची-नीची, रेतीली भूमियों में भी कम लागत व न्यूनतम कृषि क्रियाओं के साथ अधिक उत्पादन देने वाली फसलों में, मोठ सबसे उत्तम दलहन है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है, कि मोठ की फसल को सफलतापूर्वक उगाने एवं अच्छा उत्पादन लेने के लिए, रूक्ष क्षेत्रों की जलवायु ही अधिक भाती है। इन कठिन परिस्थितियों वाली जलवायु में आसानी से मोठ का अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। यही कारण है कि मोठ की फसल का देश के कुल क्षेत्रफल का लगभग 86 प्रतिशत क्षेत्र राजस्थान के भू-भाग में ही निहित है।

मोठ की फसल, दाना, हरा चारा, हरी सब्जी, हरी खाद तथा वानस्पतिक प्रोटीन (20 से 25 प्रतिशत) का एक अच्छा स्रोत है। इसको दाल के रूप में खाया जाता है तथा इसको दाल-मोठ व पापड़ के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। यही कारण है कि अब मोठ की फसल एक औद्योगिक फसल का दर्जा प्राप्त कर चुकी है। इससे संबंधित उद्योग, राजस्थान के बीकानेर जिले में मुख्य रूप से पनप रहे हैं। मोठ की जड़ों में पाई जाने वाली राजोबियम जीवाणु युक्त गाँठे भूमि में लगभग 20 से 25 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टेयर की दर से स्थापित करके भूमि में आवश्यक तत्वों की कमी की पूर्ति करती है। इतना सब कुछ होने पर भी आनुवांशिक गुणों से परिपूर्ण मोठ की फसल की उत्पादकता (254 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर), अन्य दालों की तुलना में सबसे कम है। इसका मुख्य कारण अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में मोठ को उगाने वाले किसानों द्वारा उन्नत तकनीकों का न अपनाया जाना तथा विकसित उन्नतशील किस्मों को नजर अंदाज करना है। वर्तमान लेख में विकसित तकनीकों एवं मोठ की उन्नत किस्मों का उल्लेख किया गया है ताकि उपलब्ध वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाकर किसान प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन प्राप्त कर सकें।

* पूर्व प्रधान वैज्ञानिक एवं परियोजना समन्वयक (नेशनल नेटवर्क प्रोजेक्ट ऑन एरिड लिग्यूम)

भूमि का चयन

मोठ की खेती के लिए विशेष प्रकार की भूमि एवं मिट्टी की आवश्यकता नहीं होती है, बल्कि इसके लिए रेतीली, बलुई-दोमट मिट्टी उपयुक्त पायी गयी है। इसके लिए अधिक मात्रा में जल संग्रहण करने वाली चिकनी मिट्टी अच्छी नहीं रहती है। मोठ की फसल भूमि के खारेपन से प्रभावित होती है, अतः खारी भूमि में मोठ न उगायें। मोठ की खेती रेत के टीलों व ऊँची-नीची असमतल भूमियों में भी सफलता से की जाती है। मोठ के लिए अधिक पोषक तत्वों युक्त भूमियों की भी आवश्यकता नहीं होती है।

जलवायु

मोठ के लिए 150 से 250 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्र, जहाँ प्रचुर मात्रा में प्रकाश एवं कम नमी वाली भूमि उपलब्ध हो, बहुत उपयोगी पाये गये हैं। अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में, जहाँ वर्षा 350 मि.मी. से अधिक होती है, साथ ही अधिक नमी और आसमान पर बादल छाए रहने की स्थिति होती है, मोठ की फसल फूल देने में असमर्थ होती है। अतः मोठ की फसल को नम जलवायु वाले क्षेत्रों में न उगाकर शुष्क क्षेत्रों में उगाया जाना ज्यादा लाभकारी होता है। यही कारण है कि मोठ की फसल शुष्क क्षेत्रों के लिए पूरी तरह से अनुकूलित हो चुकी है। अतः पश्चिमी राजस्थान के 12 जनपद मोठ के लिए अनुकूल पाये गये हैं।

भूमि की तैयारी

मोठ की खेती के लिये एक-दो जुताइयाँ काफी होती हैं। खेत का समतल कर लेना आवश्यक होता है। साथ ही मेढ़-बंदी कर देनी चाहिए, ताकि वर्षा का पानी बहकर खेत से बाहर न जा पाए। खेत में जल संचय के लिए ढाल की विपरीत दिशा में मेढ़ बनाई जानी चाहिए। अतिरिक्त वर्षा के पानी की निकासी के लिए भी उपयुक्त प्रबंध किये जाने चाहिए। ध्यान रहे कि अधिक वर्षा की स्थिति में खेत में पानी खड़ा न हो सके।

उन्नत किस्में

मोठ की फसल से अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए अधिक वर्षा और रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता नहीं होती है। इस फसल में अपेक्षाकृत बीमारियाँ भी कम लगती हैं। मोठ की फसल में आशा से अधिक उत्पादन को बढ़ाने एवं उसमें स्थायित्व लाने का श्रेय, इसकी उन्नत किस्मों को ही जाता है, किन्तु क्षेत्रफल एवं बीज की माँग की तुलना में उन्नत किस्में कम ही हैं।

वर्तमान समय में जलवायु एवं वर्षा की अवधि के अनुसार दो प्रकार की किस्में उपलब्ध हैं:

मध्यम अवधि वाली किस्में : मध्यम अवधि (70 से 80 दिन) में पकने एवं कम फैलावदार किस्में (जडिया, ज्वाला, आई.पी.सी.एम.ओ.-880, आई.पी.सी.एम.ओ.-912 एवं काजरी मोठ-1) जो कि 300 से 400 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पायी गई है, इस श्रेणी में आती है।

मध्यम अवधि में पकने वाली मुख्य किस्में निम्न प्रकार है -

जडिया - इसका विकास 1980 में किया गया था। कम फैलने वाली किस्म होने के साथ-साथ यह 75 से 90 दिन की अवधि में पककर 400 से 450 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की उपज देती है।

ज्वाला - इसका विकास 1985 में किया गया था। लगभग 80 से 90 दिन में पककर 500 से 550 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की उपज देती है। साथ ही मोजेक वायरस के प्रति प्रतिरोधक क्षमता के लिए जानी जाती है।

काजरी मोठ-1 - यह किस्म 1999 में विकसित की गई थी। कम फैलाव वाली यह किस्म 70 से 72 दिन में पककर 500 से 600 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर उपज देती है। यह किस्म प्राकृतिक रूप से मोजेक वायरस के प्रति प्रतिरोधक क्षमता रखती है। इसके बीजों में 24 से 26 प्रतिशत प्रोटीन की मात्रा पाई जाती है। यह किस्म संरक्षित जल वाली भूमियों के वास्ते, बहुत उपयुक्त पाई गई है। अनुकूल परिस्थितियों में किस्म काफी अच्छा उत्पादन दे सकती है (700-800 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर)।

जल्दी पकने वाली किस्में: इसमें जल्दी पकने (58 से 66 दिन), सीधी बढ़ने वाली किस्में (आर.एम.ओ.-4., एफ.एम.एम.-96, आर.एम.ओ.-257, आर.एम.ओ.-225, आर.एम.ओ.-435, काजरी मोठ-2 व काजरी मोठ-3) जो कि कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पायी गई है, इस श्रेणी में शामिल की गई है। जल्दी पकने के कारण ये किस्में, सूखे एवं कई प्रकार की बिमारियों से बच जाती है। अधिक वर्षा की स्थिति में ये अपेक्षाकृत कम उपज देती है। परिस्थिति व स्थिति के अनुसार किसान, निम्न किस्मों में से, उनके गुण धर्मों के आधार पर किसी का भी चुनाव कर सकते हैं।

जल्दी पकने वाली मुख्य किस्में निम्न प्रकार है -

आर.एम.ओ.-40: कम वर्षा वाले क्षेत्रों में जल्दी पकने (60 से 64 दिन) एवं सीधी बढ़ने के कारण यह किस्म प्रचलित है। जल्दी पकने के कारण यह किस्म मोजेक वायरस के प्रकोप से बचकर लगभग 500 से 600 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की उपज देती है। इसकी सारी फलियाँ एक साथ पक जाती है। इसके पौधे कद में छोटे होते हैं। अतः इस किस्म से चारा कम प्राप्त होता है। बीकानेर के क्षेत्रों में यह किस्म काफी प्रचलित है।

आर.एम.ओ.-257: यह किस्म 64 से 66 दिन में पककर 550 से 650 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर उपज दे सकती है। शुष्क एवं अर्द्धशुष्क दोनों ही प्रकार के क्षेत्रों के लिए यह उपयुक्त पायी गई है। इसमें चारे की मात्रा संतोषजनक पायी जाती है।

एफ.एम.एम.-96: अत्यधिक जल्दी (58 से 60 दिन) व सीधे बढ़ने वाली यह किस्म सूखे की भारी विपरित स्थिति के लिए बहुत ही उपयुक्त पायी गयी है। यह किस्म कम वर्षा वाले क्षेत्रों में 600 से 700 कि.ग्रा. दाना एवं 18 से 20 क्विंटल चारा, प्रति हैक्टेयर दे सकती है।

आर.एम.ओ.-435: इसका विकास 2001 में किया गया था तथा 64 से 67 दिनों की अवधि में पककर तैयार होने वाली यह किस्म 600 से 700 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की उपज दे सकती है। यह किस्म भी सीधी वृद्धि वाली है। सूखे एवं मोजेक वायरस के प्रकोप से यह पूर्ण रूप से सुरक्षित रहती है। यह किस्म आर.एम.ओ.-257 के मुकाबले 10 से 12 प्रतिशत अधिक उपज देती है।

काजरी मोठ-2: यह किस्म जाडिया व आर.एम.ओ.-40 के संकरण से बनी है। यह 64-67 दिन में पकती है तथा कम व अधिक वर्षा वाले दोनों ही क्षेत्रों के लिये उपयुक्त पायी गयी है। यह अर्द्ध-स्तम्भकार वृद्धि वाली किस्म है तथा 2003 में विकसित की गई थी। इस किस्म में फलियाँ बहुत अधिक लगती है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 700-1200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर है।

काजरी मोठ-3: स्तम्भकार वृद्धि वाली यह किस्म भी जल्द (60-62 दिन) पक कर अच्छा उत्पादन (700-900 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर) देने की क्षमता रखती है। सूखा व बिमारियों के प्रकोप से बच जाने के क्षमता रखती है। इस किस्म का विकास 2005 में किया गया था। कम वर्षा (200-250 मि.मी.) वाले क्षेत्रों के लिए यह किस्म बहुत उपयुक्त पायी गयी है।

बीजों की उपलब्धता

मोठ की उन्नत किस्मों के बीज, राजस्थान बीज निगम, मंडोर या फिर भारतीय बीज निगम, सब्जी मंडी के पास पावटा से प्राप्त किया जा सकता है। आर.एम.ओ. किस्मों का बीज राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर तथा काजरी मोठ-1, काजरी मोठ-2 व काजरी मोठ-3 की बीज, काजरी जोधपुर से प्राप्त किया जा सकता है। बीज खरीदते समय थैले पर अंकित किस्म के नाम को अवश्य पढ़ लेना चाहिए। बीज खरीदने के बाद क्रय रसीद अवश्य ले लेनी चाहिए। बीज बोते समय बीज का कुछ नमूना बचा लेना चाहिए, ताकि गलत बीज बेचने की अवस्था में कानूनी कार्यवाही करके किसानों के हित की रक्षा की जा सके।

बीज बोने का तरीका

मोठ की बुवाई हमेशा सीधी कतारों में करनी चाहिए तथा बीज छिड़क कर बुवाई न करें। इसकी बुवाई वर्षा होने के अगले दिन बिना खेत जुताई के की जा सकती है। देरी से बुवाई करने से खेत में आवश्यक नमी की कमी एवं तेज हवा के साथ रेत उड़कर आने के कारण भूमि की ऊपरी सतह जल्दी सूख जाती है। जल्दी पकने एवं सीधे बढ़ने वाली किस्मों (आर.एम.ओ.-40, आर.एम.ओ.-257, आर.एम.ओ.-225, आर.एम.ओ.-435, एफ.एम.-96, काजरी मोठ-2 व काजरी मोठ-3) की बुवाई 30 से 35 से.मी. की दूरी पर कतारों में की जानी चाहिए। ज्वाला, जडिया एवं काजरी मोठ-1 (मध्यम अवधि में पकने वाली किस्में) के बीजों को 50 से 60 से.मी. की दूरी पर कतारों में बोया जाना चाहिए। देरी से मानसून आने की स्थिति में कतारों की दूरी क्रमशः 45 व 25 से.मी. रखी जानी चाहिए। बीजों को बोने के बाद पाटा अवश्य लगा देना चाहिए। ऐसे करने से भूमि से आवश्यक नमी का ह्रास कम होता है। साथ ही चींटियों एवं चिड़ियों द्वारा बीजों को होने वाला नुकसान भी नहीं होता है।

बुवाई का समय तथा बीज दर

मोठ की फसल की बुवाई जल्दी करने से पौधों की कायिक वृद्धि अधिक हो जाती है तथा फलियाँ कम लगती हैं। इसके विपरीत देरी से बुवाई करने पर पौधों का कद छोटा होता है, परन्तु अधिक मात्रा में फली लगने के कारण अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है। अतः रूक्ष क्षेत्रों में मोठ की बुवाई का उपयुक्त समय 15 से 25 जुलाई के मध्य है।

आर.एम.ओ., एफ.एम.एम., काजरी मोठ-2 व काजरी मोठ-3 किस्मों के लिए 12 से 14 कि.ग्रा. व ज्वाला जडिया एवं काजरी मोठ-1 के लिए 10 से 12 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की बीज दर को उपयुक्त पाया गया है।

बीज उपचार

मोठ के बीजों को 1-3 ग्राम थीरम, कैप्टान या एग्रेसोन जी.एन. रसायनों द्वारा प्रति कि.ग्रा. बीज दर से उपचारित करने से बीजों को सड़ने व गलने से रोका जा सकता है।

उपरोक्त उपचारित बीजों को राइजोबियम कल्चर (एम.टी.-20 या एम.आर.बी.-5) द्वारा भी उपचारित करना लाभदायक रहता है। ऐसा करने के लिए लगभग 250 ग्राम गुड़ को एक लीटर गर्म पानी में घोलकर उसे ठंडा कर लिया जाता है। इसमें 625 ग्राम कल्चर मिलाकर अच्छी तरह हिलाकर, गुड़ एवं कल्चर के इस मिश्रित घोल को 10 से 12 कि.ग्रा. बीजों पर धीरे-धीरे डाला जाता है। साथ ही बीजों को लगातार हिलाते रहना आवश्यक होता है। इस प्रकार के बीज उपचार से पौधों की जड़ों में अधिक

संख्या में गाँठें बनती है, जो कि भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाकर अधिक उत्पादन में सहयोग प्रदान करती है।

खाद व उर्वरक प्रबंधन

साधारणतः मोठ की फसल को रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता नहीं होती है। फिर भी अच्छे उत्पादन के लिए 150 से 200 क्विंटल गोबर की सड़ी हुई खाद प्रति हैक्टेयर की दर से डालकर, जुताई कर देनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

मोठ की फसल से बुवाई के बाद 20 से 25 दिन तक खेत में खरपतवारों का बने रहना फसल के लिए नुकसानदायक हो सकता है। खुरपी द्वारा निराई या गुड़ाई करके, समय-समय पर खरपतवार निकाल देना चाहिए। रसायनों की अपेक्षा हैरो या खुरपी द्वारा खरपतवार निकालना सस्ता रहता है। अतः जहाँ तक हो सके खरपतवारों को निकालने के लिए रसायनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

पौध संरक्षण

मोठ की फसल को नुकसान पहुँचाने वाले रोगों में पीत शिरा मोजेक वायरस अत्यधिक प्रभावी है। इसके प्रभाव से पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। साथ ही पौधों की वृद्धि रुक जाती है, जिसका सीधा प्रभाव फसल की उपज पर पड़ता है। इसकी रोकथाम के लिए प्रतिरोधक किस्में जैसे ज्वाला, काजरी मोठ-1 या फिर जल्दी पकने वाली किस्मों को उगाया जाना चाहिए। इस रोग की वाहक सफेद मक्खियों को नष्ट करने के लिए पौधों पर 15 दिन के अंतराल पर रोगोर (0.02 प्रतिशत) घोल का छिड़काव किया जाना चाहिए।

मोठ के दूसरे मुख्य प्रभावी रोगों में सें जीवाणु पत्ती धब्बा एक है। इस रोग के प्रभाव से पत्तियों पर बैंगनी रंग के धब्बे बन जाते हैं। अत्यधिक नमी की स्थिति में ये धब्बे अधिक फैल जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (0.1 प्रतिशत) तथा केप्टान (2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज) द्वारा बीजों को उपचारित करना लाभदायक होता है।

फसल कटाई

जब पौधों की पत्तियाँ एवं फलियाँ पीले पड़ने लग जाये, तभी पौधों को उखाड़ लिया जाना चाहिए। एकत्रित पौधों को 2-3 दिन तक धूप में सूखाकर उसके बाद उपयुक्त तरीके से मंडाई करके बीजों को निकाल लेना चाहिए।

विशेष

- अधिक उत्पादन के लिये मोठ की बुवाई से पहले खेत में 20-25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर अवश्य मिलायें।

- मोठ की फसल में गहरी गुड़ाई करना बहुत उपयोगी पाया गया है।
- बीजों को उगते समय व पौधों के पकते समय कबूतरों से नुकसान होने का भय रहता है। अतः उन्हें भगाने का प्रबंध अवश्य करें।
- भंडारण के लिय ब्रुचिडस या बीटिल्स के प्रकोप से दानों को बचाने के लिए बीजों को अच्छी तरह सुखा कर लगभग 8 मि.ली. प्रति कि.ग्रा. की दर से तिल या मूंगफली के तेल से उपचारित करके भंडारण करें।



मैं मानता हूँ कि भारत की आधुनिक भाषाओं में हिन्दी ही सच्चे अर्थ में सदैव भारतीय भाषा रही है, क्योंकि वह निरन्तर भारत की एक समग्र चेतना को वाणी देने का चेतन प्रयास करती रही है और सभी भाषाओं में प्रदेश बोला है — कई बार बड़े प्रभावशाली ढंग से बोला है, हिंदी में आरम्भ से ही देश बोलता रहा है — भले ही कभी-कभी कमजोर स्वर में भी बोला है।

— सच्चिदानंद वात्स्यायन

गुजरात के कच्छ क्षेत्र में तिल की उन्नत एवं लाभदायक खेती

भागीरथ राम¹, देवी दयाल², विनोद कुमार मंगा¹,

शम्शुदीन एम.² एवं अरविन्द कुमार²

¹केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342 003

²क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र-काजरी, कुकमा-370 105, भुज-कच्छ

तिल भारत की एक महत्त्वपूर्ण खाने योग्य तेल-बीजीय फसल है यह भारत देश में प्राचीनकाल से ही बोई जाती रही है। भारत विश्व में तिल की खेती करने वाला एक प्रमुख राष्ट्र है अर्थात् विश्व का 36 प्रतिशत क्षेत्रफल तथा 25 प्रतिशत कुल उत्पादन में भारत की प्रमुख भागीदारी है। तिल में मुख्य रूप से तेल की मात्रा 50 प्रतिशत एवं प्रोटीन की मात्रा 18-20 प्रतिशत होती है। लगभग 78 प्रतिशत तिल के बीज का उत्पादन का हिस्सा तेल निकालने के काम में, 2-5 प्रतिशत हिस्सा बुवाई के काम तथा बचे हुए भाग का हिस्सा कन्फेक्सनरी व हिन्दू त्यौहारों में काम में लिया जाता है। तिल के बीज का उपयोग तिल तलने के बाद चीनी मिलाकर एवं अन्य मिठाईयाँ बनाकर काम में लिया जाता है 100 ग्राम तिल के बीज से 592 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। तिल के तेल का सेवन दक्षिण भारत में सर्वाधिक खाना पकाने के काम में लिया जाता है एवं हल्के दर्जे के तेल को साबुन बनाने के उद्योगों में काम में लिया जाता है एवं इसके तेल से तरह-तरह की दवाई भी बनाई जाती है। तेल की खली मुख्य रूप से चीनी मिलाने के बाद गरीब लोग खाने के काम में लेते हैं तथा इसकी खली दुधारू जानवरों को खिलाने से दूध की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है। इससे खाद भी बनाई जाती है, खली में 6.0 से 6.2 प्रतिशत नत्रजन, 2 से 2.2 प्रतिशत फॉस्फोरस एवं 1.0 से 1.2 प्रतिशत पोटाश की मात्रा होती है।

भारत का गुजरात राज्य बुवाई के क्षेत्र में सबसे अग्रणी राज्य है, यहाँ पर 2007-2008 में 3.55 लाख हैक्टेयर जमीन में बुवाई की गयी थी एवं जिसमें कच्छ जिला में 16100 हैक्टेयर जमीन में बुवाई की गयी थी।

उत्पत्ति एवं इतिहास

तिल की खेती प्राचीन युगों से होती आ रही है, यह कहा जा सकता है कि यह फसल मानव जीवन के सबसे उपयोग में लाई जाती थी एवं इसका वर्णन अथर्ववेद 2500-1400 ई. में किया गया है कि बीज के रंग के आधार पर इसकी दो प्रजातियाँ



मौठ की किस्मों का तुलनात्मक अध्ययन



लाभदायक तिल की खेती

हुआ करती थी एक सफेद तथा दूसरी काली। डि कन्डोले (1886) तथा दूसरे खोज कार्त्ताओं ने ऐसा कहा है कि तिल की उत्पत्ति दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका से जहाँ सभी प्रकार के तिल की जातियाँ पैदा हुई थी। जहाँ से भारत देश में भी मलेशिया एवं इन्डोनेशिया के रास्ते से आर्यों के आने से पहले आया था।

वर्गीकरण

भिन्न-भिन्न प्रकार की किस्मों को अलग-अलग तरीके से लक्षणों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।

1. फसल पकने का समय:

- (अ) जल्द पकने वाली – किस्म जो कम समय में फूल व बीज बनाये।
- (ब) देरी से पकने वाली – किस्म जो अधिक समय में फूल व बीज बनाती है।

2. बीज का रंग:

- (अ) सफेद बीज वाली किस्मों – किस्म जी.टी.-1, जी.टी.-2, जी.टी.-3, आर.टी.-346, आर.टी.-103, आर.टी.-127, पाटन-64, पाटन-65
- (ब) काले बीज वाली किस्मों – जी.टी.-10

मौसम की जरूरत

तिल मुख्यतया गर्म प्रदेशों के ट्रोपिकल एवं सबट्रोपिकल जगहों पर होता है, यह समतल-तराई तथा समुद्र तट से 1250 मी. तक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में भी होता है तिल को पकने के लिए गर्म परिस्थिति की आवश्यकता होती है। 25° से 27° से.ग्रे. तापमान में ज्यादा जर्मीनेशन एवं शुरुआती वृद्धि होती है मुख्यतया कम तापमान में फूल के बीज बनने से पहले ही नीचे गिर जाते हैं। तिल की फसल को अधिक वर्षा के कारण ज्यादा एवं जड़ में खड़े पानी से बहुत नुकसान होता है। इसकी पैदावार मुख्यतया गुजरात में खरीफ एवं जायद दो मौसम में की जाती है।

मृदा

तिल की खेती बलुई दोमट मिट्टी में ज्यादा से ज्यादा ले सकते हैं, ज्यादा बलुई, क्षारीय एवं अम्लीय भूमि तिल की खेती के लिए ज्यादा उपयुक्त नहीं है अन्यथा तिल की फसल कम क्षारीय व कम अम्लीय भूमि अधिक पैदावार देती है। मिट्टी का पी.एच. (5.5 से 8.0 तक) हो तो फसल के लिए ज्यादा उपयुक्त है, यह फसल दोमट एवं भारी क्ले (चिकनी) दोमट पानी के निकास वाली जमीन में भी हो सकती है।

किस्में

यहाँ पर मुख्य रूप से दो प्रकार की किस्में, काले बीज वाली एवं सफेद बीज वाली होती हैं, साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि काले बीज वाली तिल की किस्मों में प्रचुर मात्रा में तेल पाया जाता है एवं सफेद बीज वाली किस्मों में तेल की कम मात्रा पाई जाती है। गुजरात में पादप प्रजनन शोध-कार्य सफेद बीज वाली किस्मों में ज्यादा केन्द्रित रहा है। परिणाम स्वरूप भिन्न-भिन्न किस्में विकसित की गयी हैं। कुछ महत्वपूर्ण किस्मों का विवरण नीचे दिया गया है।

पाटन-64: यह किस्म 90 से 100 दिन में पक कर तैयार हो जाती है पौधे की ऊँचाई 1.1 से 1.3 मी. होती है। इसमें औसतन 50 कैप्सूल एक पौधे पर लगते हैं, पौधे पर कैप्सूल एक के बाद एक लगते हैं। इस किस्म के बीज का रंग सफेद होता है तथा 48 प्रतिशत तेल की मात्रा रखता है। यह किस्म 5 से 9 क्विन्टल प्रति हैक्टेयर पैदावार देती है।

पाटन-65: यह किस्म लगभग 100 दिन में पक कर तैयार होती है। इसके बीज का रंग भूरा होता है एवं लगभग 49 प्रतिशत तेल की मात्रा होती है। यह किस्म 5 से 8 क्विन्टल प्रति हैक्टेयर की पैदावार देती है। यह किस्म मुख्य रूप से उत्तर गुजरात (कच्छ, बनासकांठा, मेहसाणा, साबरकांठा) एवं दक्षिण गुजरात (नवसारी, सूरत, आनन्द, बड़ौदा, पंचमहल) के क्षेत्र में प्रमुख रूप से बोई जाती है।

जी.टी.-1: यह किस्म 80-90 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इसके पौधे की ऊँचाई 75 से 85 से.मी. तक होती है। इस किस्म के पौधों में 40 से 42 कैप्सूल लगते हैं। यह किस्म 6 से 8 क्विन्टल पैदावार देती है। इस किस्म के बीज में तेल की मात्रा 45-46 प्रतिशत तक होती है। यह किस्म मुख्य रूप से सौराष्ट्र, अमरेली, राजकोट, कच्छ के क्षेत्र में ज्यादा बुवाई की जाती है।

जी.टी.-2: यह किस्म 70 से 85 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इसके पौधे की ऊँचाई 70 से 80 से.मी. तक होती है। इस किस्म के पौधों में 30 से 41 कैप्सूल लगते हैं इस किस्म के पौधों में एक कैप्सूल में 42 से 48 बीज होते हैं। यह किस्म 7 से 8 क्विन्टल पैदावार देती है। इस किस्म के बीज में तेल की मात्रा 42 से 45 प्रतिशत तक होती है। यह किस्म मुख्य रूप से बनासकांठा, साबरकांठा, मेहसाणा, सौराष्ट्र एवं कच्छ के क्षेत्र में ज्यादा बुवाई की जाती है।

जी.टी.-3: यह किस्म 75 से 84 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इसके पौधे की ऊँचाई 60 से 70 से.मी. तक होती है। इस किस्म के पौधों में 25 से 40 कैप्सूल लगते हैं। इस किस्म के पौधों में एक कैप्सूल में 35 से 45 बीज होते हैं तथा इस किस्म के बीज का 1000 दानों का वजन 2.59 ग्राम तक होता है। यह किस्म 7 से 8 क्विन्टल पैदावार देती है। इस किस्म के बीज में तेल की मात्रा 44 से 45 प्रतिशत तक होती है।

यह किस्म मुख्य रूप से अमरेली, सौराष्ट्र, कच्छ, महेसाणा, बनासकांठा, पंचमहल तथा साबरकांठा में ज्यादा बुवाई की जाती है।

आर.टी.-346: यह किस्म 80 से 92 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इसके पौधे की ऊँचाई 70 से 85 से.मी. तक होती है। इस किस्म के पौधों में 45 से 55 कैप्सूल लगते हैं। इस किस्म के पौधों में एक कैप्सूल में 38 से 42 दाने या बीज होते हैं तथा इस किस्म के 1000 बीज या दाने का वजन 3.00 ग्राम होता है। यह किस्म 7 से 9 क्विन्टल पैदावार देती है। इस किस्म के बीज में तेल की मात्रा 45 से 46 प्रतिशत तक होता है। यह किस्म मुख्य रूप से राजस्थान, कच्छ, बनासकांठा एवं मेहसाणा में ज्यादा बुवाई की जाती है।

आर.टी.-103: यह किस्म 80 से 85 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके पौधे की ऊँचाई 75 से 90 से.मी. तक होती है। इस किस्म के पौधों में 70 से 75 कैप्सूल लगते हैं। इस किस्म के पौधों में एक कैप्सूल में 50 से 55 बीज या दाने होते हैं तथा इस किस्म के 1000 बीज या दाने का वजन 2.95 ग्राम होता है। यह किस्म 8 से 9 क्विन्टल पैदावार देती है। इस किस्म के बीज में तेल की मात्रा 45 से 47 प्रतिशत तक होती है। यह किस्म मुख्य रूप से राजस्थान, बनासकांठा, कच्छ एवं सौराष्ट्रा में ज्यादा बुवाई की जाती है।

फसल चक्र एवं मिश्रित खेती

बरसाती तिल की एकल एवं मिश्रित खेती दोनों होती है। गुजरात एवं राजस्थान में तिल मुख्य रूप से बाजरा, चवला, मूंग, मूंगफली, ज्वार तथा मक्का के साथ में बोया जाता है। तिल की एकल फसल के बाद रबी में चना, जौ एवं गेहूँ की बुवाई की जाती है।

खेत को तैयार करना

तिल का बीज बहुत छोटा होता है इसलिए खेत को तैयार उत्तम जर्मिनेशन (उगने) के लिए बहुत ही अच्छा करना चाहिए। बीज की क्यारी बिल्कुल भुरभूरी एवं पतली होनी चाहिए। साधारण तौर पर एक जुताई एवं उसके बाद दो से तीन बार हेरो लगाने के बाद पाटा लगाने से खेत की स्थिति बुवाई करने के योग्य हो जाती है।

बीज एवं बुवाई

तिल की बुवाई जून के अन्तिम सप्ताह एवं जुलाई के पहले सप्ताह में करना सबसे उपयुक्त है। 25° से 27° से.ग्रे. तापमान तिल के उगने के लिए उपयुक्त है गुजरात के कच्छ, सौराष्ट्र, बनासकांठा एवं अमरेली में इसकी बुवाई मार्च के पहले सप्ताह में ही उनाला तिल लेने के लिए भी की जाती है। तिल के बीज की बुवाई हमेशा लाइन (पंक्ति) में ही करनी चाहिए तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 से.मी. एवं

पौधे से पौधे की दूरी 15 से.मी. रखनी चाहिए। साधारणतया एक हैक्टयर करने के लिए 3 से 4 कि.ग्रा. तिल की आवश्यकता होती है जैसा कि तिल का बीज बहुत छोटा होता है इसलिए इसकी बुवाई करने से पहले इसके बीज को मिट्टी या गोबर की खाद में पाऊंडर में मिलाकर करने से बीज समान रूप से डलता है। बीज की बुवाई में गहराई 2 से.3 से.मी. तक रखते हैं। बुवाई करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि खेत की मिट्टी में नमी रहनी चाहिए। बीज की बुवाई करने से पहले बीज को ऐगरोसान जी.एन. या सेरेसान से 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज को उपचारित करना चाहिए।

खाद

तिल मुख्य रूप से छोटे किसानों के द्वारा अपेक्षाकृत कम उपजाऊ वाली जमीन में लगाया जाता है। इसी कारण इसकी उत्पादन क्षमता कम होती है। साधारण तौर पर यह देखा गया है कि तिल की बुवाई रेजीड्यूल उपजाऊपन के आधार पर जो भी किसान के बाद बचा हुआ खाद होता है वही उपयोग में लाते हैं। लेकिन 20-25 टन सड़ी हुई गोबर खाद अगर 4 महीने पहले डाल देवे तो उसके बहुत ही आशाजनक परिणाम सामने आते हैं। बहुत ही अच्छी फसल लेने के लिए गोबर की खाद के अलावा 30 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 30 कि.ग्रा. पोटेशियम डालना चाहिए। नत्रजन एवं फॉस्फोरस के डालने से तिल के पौधों में तिल के डोडे (कैप्सूल) एवं हरेक कैप्सूल में बीज की मात्रा ज्यादा होगी जिससे पैदावार में बढ़ोत्तरी होगी। फॉस्फोरस एवं पोटेश की मात्रा बुवाई के समय एक साथ डालनी चाहिए। बलुई मिट्टी में नत्रजन को तीन बार तीन भागों में डालना चाहिए, बलुई मिट्टी में नत्रजन का एक तिहाई हिस्सा बुवाई के समय पर एवं एक तिहाई हिस्सा फसल के 30 दिन की होने के बाद डालना चाहिए और भारी मिट्टी में दो तिहाई बुवाई एवं एक तिहाई हिस्सा फूल आने के समय डालने पर फसल की पैदावार में बहुत फायदा एवं तिल की फसल ज्यादा होती है।

बीमारियाँ एवं रोकथाम

तिल तरह-तरह की बीमारियों से ग्रसित रहता है। कुछ महत्वपूर्ण बीमारियों के लक्षण एवं रोकने के तरीके का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

फीलोडि: यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण हानिकारक तिल की बीमारी है तथा यह सभी तरह के खेतों में जहाँ कहीं भी इस बीमारी का प्रकोप होता है। यह बीमारी माइक्रोप्लाज्मा जैसा जीव से जो पत्ती के फुदके (हॉपर) से एक पौधे से दूसरे पौधे में प्रवाहित होती है। यह बीमारी फसल के फूल आने के समय पर ज्यादा भयानक होती है। एक अथवा दो फूल के अंग (फ्लोरल ऑरगन) पूर्ण रूप से पत्तियों जैसे आकृति में परिवर्तित हो जाती हैं एवं इसके वेजीटेबल बढ़त बहुत ही तीव्र गति से होती है ज्यादातर इसका पौधा छोटी-छोटी पत्तियाँ तथा दो टहनी की दूरी कम हो जाती है। आगे चलकर पौधे का ऊपर का भाग गुच्छे के रूप में परिवर्तित हो जाता है अगर

इस बीमारी का प्रकोप कम है तो पौधे के निचले भाग में कैप्सूल बनने के बाद कुछ बीज पैदा करता है जो बहुत ही कम वजनदार होता है।

रोकथाम

- खेत की स्थिति में फैलाव को कम करने के लिए फुदके (हॉपर) को मारने तथा मेटासिस्टोक्स @1 मि.ली. की दर से पानी में मिलाकर पौधे पर छिड़काव करना चाहिए।

जड़ एवं तना गलन: तिल में यह बीमारी माइक्रोफोमिना फेसीओली एवं स्कलेरिटीयम बोटानिकोला फफूंदी की वजह से आती है। इसके लक्षण जड़, तना, डोडा (कैप्सूल) एवं बीजों पर ज्यादा प्रभावी ढंग से दिखाई देता है। जड़ तथा तना भूरे रंग का दिखाई देने लगता है। धीरे-धीरे पूरे पौधे का रंग भूरा हो जाता है। ज्यादा मात्रा में ग्रसित पौधा बीज नहीं बना पाता तथा बीज बहुत ही पतला एवं हल्का होता है।

रोकथाम

- बीज को केप्टान अथवा ब्रेसीकोल @ 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से बुवाई से पहले उपचारित करे।
- एक साल से दूसरी साल (लगातार) तिल की फसल उसी खेत के टुकड़े में नहीं लेवें।

बैक्टीरियल ब्लाईट: यह तिल की बीमारी जेन्थोमोनास सेसामी की वजह से होती है। इस रोग के लक्षण में छोटे पौधों पर भूरा और काले रंग के चकते पड़ जाते हैं, आगे जाकर यह चकते आपस में मिल जाते हैं। इस रोग के दौरान पत्तियाँ पकने से पहले ही मर जाती हैं एवं पौधे के तने व पीटियोल पर धब्बे पड़ जाते हैं।

रोकथाम

- बीज की बुवाई से पहले बीज उपचार के लिए अग्रामाईसीन (0.025 प्रतिशत) + सीरेशान गीला (0.05 प्रतिशत) के घोल में 9 घण्टे तक भिगोये।
- स्ट्रेप्टोसाइक्लीन (3 ग्राम 25 गेलन पानी) में मिलाकर करीब 25 दिन की फसल पर छिड़काव करना चाहिए। इसके बाद दो अथवा तीन छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

कटाई एवं बीज को निकालना

तिल की कटाई पत्तियाँ पीली पड़ने एवं डोडा (कैप्सूल) के पीले होने के बाद करनी चाहिए। डोडा (कैप्सूल) के बेस में पहले पकता है एवं उसके बाद ऊपर का पकता है। पौधे जैसे ही पीले एवं भूरे रंग में परिवर्तित हो, वैसे ही इसकी कटाई कर लेनी चाहिए। पौधे को खेत में पूरा नहीं पकने देवे अन्यथा अधिक तापमान से डोडों में

तड़कना (सेटरींग) चालू हो जाता है, जिससे इसकी उपज में काफी नुकसान होता है। कटाई करने के बाद दस से पन्द्रह पौधों को एक साथ बाँधकर पक्के आँगन (थ्रेसिंग फ्लोर) पर 5 से 7 दिन के लिए सुखाकर उसके बीज को निकाल लेवे।

पैदावार

तिल की पैदावार मुख्य रूप से कई बार ज्यादा एवं कई बार कम होती है एवं उनकी पैदावार मुख्य रूप से उन्नत किस्म पर आधारित है। उन्नत किस्म के साथ-साथ अगर आपने खाद की मात्रा नियमित पैकेज एवं प्रेक्टीसेस से डाली है तो निश्चित रूप से आपकी पैदावार में बहुत बढ़ोत्तरी होगी। तिल की फसल मुख्य रूप से 8 से 10 क्विन्टल बीज प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है।



भारतवर्ष की राजभाषा चाहे जो हो और जैसी भी हो, पर इतना निश्चित है कि भारतवर्ष की केन्द्रीय भाषा हिन्दी है। लगभग आधा भारतवर्ष उसे अपनी साहित्यिक भाषा मानता है, साहित्यिक भाषा अर्थात् उसके हृदय और मस्तिष्क की मूख मिटाने वाली, करोड़ों की आशा-आकांक्षा, अनुराग-विराग, रूदन-हास्य की भाषा। उसमें साहित्य लिखने का अर्थ है करोड़ों के मानसिक स्तर को ऊँचा करना, करोड़ों मनुष्यों को मनुष्य के सुख-दुख के प्रति संवेदनशील बनाना, करोड़ों को अज्ञान, मोह और कुसंस्कार से मुक्त करना।

— हजारी प्रसाद द्विवेदी

शुष्क क्षेत्र के लिए उपयोगी उद्यानिकी फसलें

एस.के. शर्मा एवं आर.एस. सिंह

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल, बीकानेर-334 006

देश का लगभग 12 प्रतिशत भू-भाग शुष्क क्षेत्र के अर्न्तगत आता है। इस क्षेत्र का लगभग 60 प्रतिशत भाग या तो कृषि योग्य नहीं है या फिर परती भूमि में आता है। यह भूभाग लगभग दो करोड़ हैक्टेयर है जिसमें बागवानी विकास की अपार संभावनाएँ हैं। राजस्थान का तो लगभग दो तिहाई क्षेत्र ऐसा है जो बागवानी विकास के लिए आज के परिप्रेक्ष्य में और अधिक महत्व रखता है। फसलों की खेती की अपेक्षा बागवानी से अधिक उपज एवं आय मिलती है। फलदार पौधों के बाग कृषकों के लिए आय का स्थाई स्रोत भी माना जाता है क्योंकि अनुकूल परिस्थितियाँ न होने पर भी फल वृक्षों से आशातीत उत्पादन मिल जाता है। अब अन्य परम्परागत फसलों के क्षेत्रों में उत्पादन को और अधिक बढ़ाने की स्थिति नहीं है कारण कि घटते जल संसाधन और लगातार पड़ने वाले अकाल की स्थिति को देखते हुए सबका ध्यान शुष्क बागवानी पर टिका हुआ है। इसके अतिरिक्त लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या के सर्वांगीण विकास के लिए मरु भूमि क्षेत्र में उद्यानिकी पर जोर देना आवश्यक है। कम वर्षा, घटते जल स्रोत, महंगे होते संसाधन, और कई वर्षों से निरंतर सूखा पड़ने से फसल उत्पादन किसानों के लिए दिनों दिन कड़ी चुनौती बनता जा रहा है। ऐसी परती व बंजर भूमि जहाँ फसलों की काश्त संभव नहीं है वहाँ फल वृक्ष सफलता पूर्वक लगाए जा सकते हैं परन्तु प्रारम्भिक अवस्था में अच्छी देख-रेख करनी चाहिए। फलों की बागवानी से पर्यावरण सुरक्षा के अलावा वर्ष भर कार्य के अवसर एवं अनेक प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त हो सकेंगी। काष्ठ कला उद्योग, लकड़ी, ईंधन, चारा, परिरक्षित पदार्थ, मधुमक्खी पालन व अन्य कुटीर उद्योग स्थापित होंगे। फल एवं फलोत्पाद की निर्यात की संभावनाएँ बढ़ेंगी, आयात पर होने वाली विदेशी मुद्रा खर्च में भी कमी हो सकेगी।

शुष्क जलवायु परिस्थितियों में उद्यानिकी फसलों का चयन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है क्योंकि इससे जीवन यापन के हर पहलुओं का संचालन संभव है। बढ़ती हुई आबादी के लिए उनकी मांग के अनुसार पौष्टिक फल व सब्जियों का उत्पादन करना आवश्यक है जो कि अभी भी लक्ष्य से (फल 85 ग्राम व सब्जी 240 ग्राम प्रति दिन प्रति व्यक्ति) बहुत कम है। फल, फूल, सब्जियों तथा औषधीय व सुगन्ध पौधों की खेती से क्षेत्र का विकास होने के साथ ही अर्थ व्यवस्था मजबूत होगी।

शुष्क क्षेत्र में बाग विकास

बेर, आंवला, अनार, खजूर, बेल, शहतूत, फालसा, करौंदा, इमली इत्यादि के अतिरिक्त किन्नों, नींबू, अमरुद के उत्तम गुणवत्ता के फल इस क्षेत्र में उन्नत विधियों द्वारा पैदा किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ की स्थानीय वनस्पतियाँ जैसे कि कैर, सांगरी, लसोडा, पीलू, इत्यादि में भी सुधार करके व्यावसायिक उत्पादन लिया जा सकता है जो सूखे की परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन देने में सक्षम है।

कद्दूवर्गीय फसलें जैसे तरबूज, खरबूजा, ककड़ी, तुरई, लौकी, काचरी, मतीरा, टिण्डा तथा बैंगन, टमाटर, मिर्च, लोबिया, भिण्डी, सहजन एवं पत्तीदार सब्जियां जैसे मैथी, पालक बहुतायत से पैदा किए जा सकते हैं। स्थानीय वनस्पति जैसे काचरी, फूट ककड़ी, मतीरा, ग्वारफली, ग्वारपाठा इत्यादि के उत्पादन तकनीक में सुधार करके व्यावसायिक उत्पादन लिया जा सकता है क्योंकि इन फसलों में सूखा सहने की अपार क्षमता होती है तथा इनकी बारानी खेती शुष्क जलवायु में सफलतापूर्वक की जा सकती है।

सारणी 1: शुष्क क्षेत्र हेतु उपयोगी उद्यानिकी फसलें

फलदार	सब्जियां	फूल	अन्य फसलें
बेर, आंवला, अनार, खजूर, किन्नों, बेल, लसोडा, फालसा, कैर	काचरी, मतीरा, ग्वार फली, लौकी, टिंडा, बैंगन, सहजन, सांगरी, सेम फली	गेंदा, गुलदाउदी, गुलाब चेती	ग्वारपाठा,

उन्नत किस्में

शुष्क क्षेत्र में बाग विकास के लिए फल एवं उपयुक्त उन्नत किस्मों के चयन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है जैसे कि बेर की गोला, सेव, मुंडिया, उमरान, कैथली, बनारसी कड़ाका, थार भुभराज, थार सेविका; आंवला के एन.ए.-7 (नीलम), कृष्णा, कंचन, चकैया, एन.ए.-6 (अमृत); बेल की एन.बी.-5, एन.बी.-9, गोमा यशि; अनार की जालौर सीडलैस, मृदुला, गणेश, जी-137, फूले अरक्ता व भगवा एवं खजूर की हलावी, बरही, मेडजूल, जाहिदी, चिपचाप, शामरान, खुनेजी किस्में उत्पादन एवं गुणवत्ता की दृष्टि से अच्छी पाई गई हैं। बाग में क्षेत्र के अनुसार अगेती, मध्यम एवं पछेती पकने वाली किस्में लगायें।

बाग प्रबन्धन तकनीकें

स्वस्थानिक (इन-सीटू-बडिंग) विधि द्वारा कम वर्षा क्षेत्र में उचित रोपाई की दूरी 6 x 6 मी. पर बेर के बाग स्थापित करना उपयुक्त पाया गया है जबकि आंवला,

खजूर, बेल के पौधे 8 x 8 मी. पर लगाये जाने चाहिए। जल संरक्षण एवं बाग प्रबंध की उन्नत तकनीकों को अपनाकर अधिक उत्पादन एवं अच्छी गुणवत्ता के फल प्राप्त किये जा सकते हैं। बाग में पलवार बिछाकर नमी संरक्षण व खरपतवार नियंत्रण द्वारा भी फलोत्पादन में बढ़ोतरी की जा सकती है। उचित समय पर पौधों की कटाई-छंटाई करना भी आवश्यक है। जैसे बेर में प्रतिवर्ष गर्मी के मौसम (अप्रैल-मई माह) में कटाई-छंटाई की जाती है ताकि अच्छी पौध वृद्धि एवं फल उपज प्राप्त की जा सके। फालसा के पौधों की कटाई जमीन सतह से 10-15 से.मी. ऊपर से दिसम्बर माह में करना उपयुक्त रहता है। बूंद-बूंद (ड्रिप) सिंचाई प्रणाली फलदार पौधों के लिए सबसे उपयुक्त तकनीक है। जिसमें पानी की बचत के अलावा उर्वरक का प्रयोग भी आसानी से किया जाता है। सघन बागवानी में उन्नत किस्में चयनित कर व छत्रक प्रबंध करके प्रति हैक्टेयर अधिक फल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

फलदार वृक्षों में सूखा सहने की क्षमता होती है। सूखा पड़ने तथा रोग लगने पर फसलें खराब हो जाती है ऐसे में बाग से कुछ न कुछ उत्पादन, चारा, लकड़ी इत्यादि अवश्य मिलता है। भूमि संरक्षण के लिए भी वृक्ष बहुत उपयोगी हैं।

शुष्क क्षेत्र में फल उत्पादन की गुणवत्ता श्रेष्ठ होने के कारण भविष्य में उत्पादों के निर्यात की संभावनाएँ हैं। बागवानी फसलें जैसे कि सूखा सहिष्णु बेर, गूदा, आंवला, बेल, इत्यादि तथा काचरी, मतीरा, ग्वारफली आदि तो सूखा के प्रति बीमित (ड्रिन्थयोरड) फसलें हैं क्योंकि अन्य फसलें सूखे की स्थिति में उत्पादन न दें पर इनसे आशाजनक उत्पादन तथा पशुधन के लिए पौष्टिक चारा तो मिल ही जाता है जिससे अकाल के समय में भी किसान को जीविकोर्पाजन हेतु मदद मिल जाती है।

पौधों को आयु अनुसार संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरक देना चाहिए ताकि अच्छी गुणवत्ता के फल उपज प्राप्त हो सके। नये स्थापित बागों से प्रारंभिक वर्षों में कम फसल मिलती है ऐसी स्थिति में कतारों के बीच खाली भूमि में फसलें उगाने से अतिरिक्त आय तथा समुचित भू-उपयोग के साथ-साथ इसकी जल धारण क्षमता एवं भौतिक दशा में सुधार होता है। अल्प अवधि में अधिक उत्पादन देने वाली अन्तः फसलें उगानी चाहिए तथा बाग के पूर्ण फलत में आने के बाद अन्तः फसलें जैसे दलहनी, मसाले, सब्जियाँ, फूल, औषधीय पौधे उगा सकते हैं। फल वृक्षों के साथ साथ कई प्रकार के उपयोगी एवं पौष्टिक घास भी उगा सकते हैं जिससे पशुओं के लिए वर्ष भर चारा उपलब्ध होता रहता है। कम वर्षा क्षेत्र में बेर या गूदा के साथ कतारों की बीच वाली जमीन में धामण घास उगाना (उद्यान-चारागाह-पद्धति) लाभप्रद पाया गया है।

शुष्क क्षेत्र में स्थापित केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान ने स्थानीय सूखा सहिष्णु वनस्पतियों की ओर ध्यान दिया है और इसी क्रम में संस्थान ने मतीरा, काचरी, फ्रूट

ककड़ी व सलाद ककड़ी, सेम फली, लौकी, सांगरी इत्यादि उद्यानिकी फसलों की किस्में विकसित की। इन सुधरी किस्मों के बीज एवं पौधे तथा बाग विकास की उन्नत तकनीकों का उपयोग कर बाराणी क्षेत्र के किसान लाभान्वित भी हो रहे हैं।

सारणी 2: केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान द्वारा विकसित उन्नत किस्में

फल वृक्ष	किस्में
बेर	थार भूभराज, थार सेविका, गोमा कीर्ति
आंवला	गोमा ऐश्वर्य
बेल	गोमा यशि
अनार	गोमा खट्टा (अनारदाना हेतु)
जामुन	गोमा प्रियंका
इमली	गोमा प्रतीक
सब्जियां	
मतीरा	थार मानक, ए.एच.डब्ल्यू-19, ए.एच.डब्ल्यू- 65
काचरी	ए.एच.के.-119 एवं ए.एच.के.-200
फ्रूट ककड़ी	ए.एच.सी.-2, ए.एच.सी.-13
ककड़ी	ए.एच.एस.-10 एवं ए.एच.एव.-82
लोकी	थार समृद्धि
खेजड़ी	थार शोभा
ग्वार फली	थार भादवी, गोमा मंजरी
सेम फली	थार कार्तिकी, थार माघी
स्वार्ड बीन	थार माही

शुष्क बागवानी का महत्व

राजस्थान में वर्ष 2009-10 में एक आंकलन अनुसार लगभग 32 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में 86 लाख 90 हजार फलदार वृक्ष लगे हुए हैं। इसी प्रकार 1 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल से लगभग 4 लाख मीट्रिक टन सब्जियों की पैदावार होती है जो कि प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष मांग से बहुत ही कम है। अनार के फल उत्पादन के क्षेत्रफल में अन्य फलों की तुलना में थोड़ी कमी हुई है। जबकि 1838 हेक्टेयर में आंवला के 4.10 लाख वृक्ष लगे हैं और 1165 हेक्टेयर क्षेत्र में बेर के बाग लगे हुए हैं परन्तु अभी तक कई

महत्वपूर्ण फल जैसे—खजूर, ईमली, बेल तथा नींबू वर्गीय हैं जिनके उत्पादन क्षेत्र में और अधिक सम्भावनाएँ हैं। क्षेत्र की जलवायु के अनुसार गेंदा, मोगरा, देशी गुलाब (चैती), आदि फूलों की खेती व्यापक स्तर पर सम्भव है। फूलों की खेती लगभग 1940 हैक्टेयर में जयपुर, अजमेर, जोधपुर, उदयपुर, गंगानगर, पाली, कोटा इत्यादि जिलों में होती है जिससे 2200 मी. टन उत्पादन मिलता है। सूखे गुलाब की पंखुड़ियों की माँग अरब देशों में अधिक है जिससे इसके निर्यात की भी सम्भावनाएँ हैं। इनकी खेती एवं उनसे जुड़े व्यवसाय फूलों की सजावट (डेकोरेशन), इत्र, सुगन्धित तेल तथा गुलकंद, गुलाब जल बनाने को भी बढ़ावा मिलेगा। इससे बागवानों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी। ग्रामीण क्षेत्र में इकाईयों की स्थापना से विकास दर मजबूत होगी तथा कृषकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति सुधरेगी।

खाद्य पदार्थ के रूप में

ऐसा अनुमान है कि यदि प्रदेश में कुपोषण से निपटा जाना है तो फसलों का उत्पादन आने वाले बीस वर्षों में लगभग पांच गुणा बढ़ाना पड़ेगा। अतः इस क्षेत्र की जनसंख्या को संतुलित आहार प्रदान करने के लिए इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है फल वृक्षों की खेती से पौष्टिक फल, चारा तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। फलों का सेवन स्वस्थ शरीर व विकास के लिए जरूरी है। कई रोगों के निदान में फलों के सेवन की अहम भूमिका होती है। फलों से प्रचुर मात्रा में विटामिन, खनिज, शर्करा, आदि मिलते हैं जिससे रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। इसे जीवन रक्षक खाद्य भी माना गया है। फलों के सेवन से शक्ति (ऊर्जा) प्राप्त होकर शरीर बलवर्धक होता है।

औषधीय महत्व

शुष्क क्षेत्र में कई औषधीय गुणवत्ता वाली वनस्पतियाँ भी पायी जाती हैं जिनका व्यावसायिक उत्पादन संभव है जैसे कि ईसबगोल, अश्वगंधा, गुग्गल, सनाय (सोनामुखी), गिलोय, इत्यादि। माटी की महक से लेकर रसोई में उपयोग आने वाली जीरा, धनिया, मैथी, सौंफ जैसे मसाले वाली फसलों का भी इस प्रदेश में मुख्य स्थान है। अच्छी गुणवत्ता के धनिया, मेथी, जीरा, सौंफ, अजवायन इत्यादि का उत्पादन शुष्क क्षेत्रों से किया जा सकता है जिससे निर्यात की और अधिक सम्भावनाएँ बढ़ सकती हैं। फलों में अनेक औषधीय गुण पाये जाते हैं जैसे—बेल का शरबत गर्मी में शीतलता देने के अलावा दस्त, पेचिस एवं पेट के विकारों के लिए अचूक औषधि है। इसी प्रकार आँवला अत्यधिक विटामिन 'सी' युक्त पौष्टिक, शक्ति-वर्धक च्यवनप्राश का मुख्य घटक है। आँवला के फल एवं उत्पाद के सेवन से विटामिन सी की पूर्ति होती है तथा दंत रोग में लाभ होता है। विभिन्न आयुर्वेदिक औषधियों एवं घरेलू उपचार में फल व सब्जियों का

प्रयोग प्राचीनकाल से ही किया जाता है। आंवला का प्रयोग तेल, त्रिफला चूर्ण, च्यवनप्राश, आदि के बनाने में किया जाता है। विविध प्रकार के फलों का प्रयोग प्रसाधन सामग्री निर्माण में भी किया जाता है। फलों का रस मुख्य रूप से रोगियों के आहार के लिए होता है। सुपाच्य एवं पौष्टिकता से भरपूर होने के कारण ही चिकित्सक द्वारा इसकी अनुशंसा की जाती है।

औद्योगिक एवं आर्थिक विकास में

विश्व में फलोत्पादन के क्षेत्र में भारत का दूसरा स्थान है। वर्तमान में लगभग 4.80 मिलियन हेक्टेयर बागवानी क्षेत्र से कुल फलों का लगभग 45.50 मीट्रीक टन पैदावार होती है। फल उत्पादन बढ़ने से पौषक खाद्य पदार्थों की उपलब्धता, रोजगार के अवसर, आय स्रोत एवं निर्यात की सम्भावनाएँ भी बढ़ेंगी। उदाहरण के रूप में शुष्क क्षेत्र में उगने वाले खजूर के उत्पादन में बढ़ोतरी करके पिंड खजूर व छुआरा के आयात पर व्यय होने वाली विदेशी मुद्रा के खर्च में कमी की जा सकती है। विगत दो वर्ष में खजूर के क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है तथा राजस्थान, गुजरात प्रदेश में खजूर के नये बाग विकसित हुए हैं परन्तु अभी खजूर के सस्ते दर पर पौधों की उपलब्धता फल उत्पादन में वृद्धि रोग व कीट नियन्त्रण, फल भण्डारण, प्रसंस्करण तथा विपणन विषय पर और कार्य करने की आवश्यकता है। देश के कई भागों जैसे महाराष्ट्र, कर्नाटक से अनार के ताजे फलों का निर्यात किया जा रहा है। अब अन्य शुष्क क्षेत्रीय फल जैसे अंजीर, सीताफल, इमली की खेती को बढ़ावा देने पर बल दिया जाने लगा है। फल वृक्षों से फलों के अतिरिक्त ईंधन, इमारती लकड़ी, तेल, गोंद, इत्यादि भी मिलते हैं। इन फसलों पर आधारित कई प्रकार के लघु उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं जैसे फल-सब्जी-मसाला परिरक्षण एवं संशोधन उद्योग जिसमें मसाले, अचार, चटनी, सूखे पाउडर, मुरब्बा, कैंडी इत्यादि आते हैं। इन उद्योगों से कई अन्य सह उद्योग जैसे कांच, प्लास्टिक, लकड़ी, टिन कण्टेनर, डिब्बा बन्दी, मोम उद्योग, इत्यादि को भी बढ़ावा मिलता है जिससे ग्रामीण अंचल में रोजगार के आँकलन अनुसार अवसर भी बढ़ेंगे। वर्तमान में आयात को कम कर फल एवं बागवानी उत्पाद के निर्यात करने की बात सोचनी होगी जो समुचित फल उत्पादन बढ़ने पर ही सम्भव है।

सामाजिक उन्नति में

ग्रामीण क्षेत्र में आय की दृष्टि से सामाजिक स्तर को सुधारने में भी बागवानी का महत्वपूर्ण योगदान है। फलदार पौधों से प्रति एकड़ उपज दूसरी फसलों की तुलना में अधिक होती है। प्रति एकड़ उपज बढ़ने पर अधिक आमदनी भी प्राप्त होती है और वर्ष भर कार्य के अवसर उपलब्ध होते रहते हैं। शुष्क बागवानी विकास से किसान को अपने उत्पाद के विपणन में भी लाभ होगा और उपज का सही मूल्य भी मिलेगा। जब

विभिन्न प्रकार. फल व सब्जियों की खेती में बढ़ोतरी होगी तो मांग के अनुसार उचित दर से फल-सब्जी सुलभ हो सकेंगे। ग्रामीण विकास से लोगों का शहरों की ओर पलायन भी रुकेगा। क्षेत्र में फूलों एवं अलकृत पौधों की खेती से पर्यटन को भी बढ़ावा मिलेगा।

पारिस्थितिक विकास

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या दिनों-दिन विकराल रूप लेती जा रही है जो एक चुनौती है। परती एवं बंजर भूमि विकास एक विकट समस्या है। इन दोनों ही स्थितियों में बागवानी विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। विभिन्न परिस्थितियों के लिए चुनिंदा बागवानी वाली फसलें लगा कर इन समस्याओं का कुछ हद तक समाधान ही नहीं अपितु सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति के अवसर भी विकसित किये जा सकते हैं। शुष्क क्षेत्र में वनस्पतियां कम पायी जाती हैं। ऐसे में फलदार पौधे लगाकर पर्यावरण की संरक्षा की जा सकती है जिससे स्वच्छ व शुद्ध वातावरण के अलावा पौष्टिक फल व अन्य कई प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती है। फलदार पौधों की धार्मिक महत्त्वता भी है। इसी कारण फल वृक्षों जैसे-आंवला, खेजड़ी, केला आदि की पूजा की जाती है। वृक्षों की पूजा-पाठ का वर्णन अनेक साहित्यों में मिलता है। आज के परिपेक्ष में इनकी महत्ता हमारे लिए प्राण वायु प्रदाता के रूप में है जो बढ़ते प्रदूषण के कारण दूषित हुए वातावरण से हमारे स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं। सर्वविदित है कि मनुष्य को स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छ व शुद्ध वातावरण की आवश्यकता होती है। फल उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों फलों की किस्मों में फूल झड़ना, अफलत, परागण, फलों का फटना, अपरिपक्व फलों को गिरना इत्यादि समस्याएँ होती हैं जिनका निराकरण उचित बाग प्रबन्ध तकनीक अपनाकर दूर किया जा सकता है। फलदार पौधों को कीड़ों एवं बीमारियों से बचाव करना जरूरी है ताकि फल की गुणवत्ता अच्छी रहे साथ ही विपरीत परिस्थितियों, जंगली जानवरों व पाले के प्रभाव से भी बचाना आवश्यक है। फलों की समय पर तोड़ाई, संभाल, भण्डारण तथा प्रसंस्करण पर ध्यान देना आवश्यक है तभी उत्पाद से अच्छा मुनाफा मिल सकेगा। इस प्रकार देश के शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में आर्थिक स्थायित्व के लिए ही नहीं वरन् उनकी सामाजिक उन्नति के लिए भी शुष्क बागवानी का विकास करना आवश्यक है। अतः शुष्क क्षेत्र के विकास के लिए शुष्क बागवानी का कोई विकल्प नहीं है इस के ऊपर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है। इससे देश में एक नई सुनहरी क्रान्ति (गोल्डन रिवोल्यूशन) आएगी। देश में उद्यानिकी विकास के लिए केन्द्र सरकार ने बागवानी मिशन की स्थापना की है। फल एवं इसके उत्पादों की उपलब्धता बढ़ने से देश में मांग के अनुसार प्रति व्यक्ति आपूर्ति हो सकेगी तथा निर्यात से आर्थिक स्थिति में भी उल्लेखनीय सुधार होगा।



सिंचित शुष्क क्षेत्रों में गाजर की लाभकारी खेती

प्रदीप कुमार एवं पी.आर. मेघवाल

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342 003

गाजर सर्दियों में उगाई जाने वाली एक प्रमुख सब्जी की फसल है। हमारे आहार में इसका उपयोग विभिन्न रूपों में किया जाता है। इसकी ताजी जड़ों का उपयोग सलाद, रस, हलवा तथा सब्जी बनाने के अलावा प्रसंस्कृत उत्पादों जैसे अचार, मुरब्बा, जैम, सूप, कैंडी, आदि में किया जाता है। इसकी जड़ों का संतरी-लाल रंग इसमें उपस्थित बीटा कैरोटीन की वजह से होता है, जो एक उत्तम प्रकार का एंटीऑक्सीडेंट है तथा गाजर इसका सर्वोत्तम श्रोत माना जाता है। हमारे शरीर में यह बीटा कैरोटीन यकृत द्वारा विटामिन 'ए' में परिवर्तित कर दिया जाता है। बीटा कैरोटीन के अलावा विटामिन 'सी', थायमीन, राइबोफ्लेबिन, नायसिन, भोज्य रेशा, लोहा, फॉस्फोरस, तथा शर्करा गाजर में पाये जाने वाले अन्य प्रमुख पोषक तत्व हैं (सारणी 1)।

गाजर औषधीय गुणों का भण्डार है, यह आँखों की अच्छी दृष्टि तथा शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बनाए रखने में मदद करती है, साथ ही रक्त के शुद्धीकरण व शरीर में क्षारीयता - अम्लीयता को संतुलित रखने तथा आंतों को साफ करने में सहायक है।

सारणी 1 : गाजर का पौषक महत्व

गाजर के 100 ग्राम खाए जाने वाले भाग में पौषक तत्वों की मात्रा	
नमी	86.0 ग्राम
प्रोटीन	0.9 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट्स	10.6 ग्राम
वसा	0.2 ग्राम
भोज्य रेशा	1.2 ग्राम
कैल्शियम	80 मि.ग्रा.
फॉस्फोरस	30 मि.ग्रा.
पोटेशियम	108 मि.ग्रा.
सोडियम	35.6 मि.ग्रा.
लौह तत्व	2.2 मि.ग्रा.

गाजर के 100 ग्राम खाए जाने वाले भाग में पौषक तत्वों की मात्रा	
विटामिन 'ए'	3150 आई.यू.
थायमीन	0.04 मि.ग्रा.
राइबोफ्लेबिन	0.02 मि.ग्रा.
विटामिन 'सी'	3.0 मि.ग्रा.
नायसिन	0.6 मि.ग्रा.
ऊर्जा	48.0 कि. कैलोरी

जड़ वाली सब्जियों में गाजर का प्रमुख स्थान है। यह एक ठण्डी जलवायु की फसल है। मैदानी भागों में इसकी खेती रबी अर्थात् सर्दियों के मौसम में जबकि पहाड़ी क्षेत्रों में यह बर्फ पिघलने के पश्चात बसन्त या ग्रीष्म ऋतु में उगाई जाती है। इसकी खेती देश के लगभग सभी प्रान्तों में की जाती है। पश्चिमी राजस्थान के शुष्क भागों खासकर जोधपुर व इसके आस-पास के सिंचित क्षेत्रों में इसकी खेती की शुरुआत पिछले कुछ वर्षों में ही हुई, जो यहाँ काफी लाभकारी होने की वजह से अब व्यापक स्तर पर की जा रही है। इस क्षेत्र की रेतीली भूमि इसकी जड़ों के अच्छे विकास के साथ-साथ उत्तम आकार के लिए उत्तरदायी है, तथा जड़ विकास के समय ठंडा व शुष्क वातावरण इसकी मिठास तथा बेहतर रंग के लिए अत्यन्त उपयोगी माना जाता है। इस क्षेत्र में पैदा होने वाली गाजर अपेक्षाकृत अधिक लम्बी व सीधी होती है। ये सभी कारक स्थानीय तथा दूरस्थ बाजारों में यहाँ की गाजर के अच्छे मूल्य के लिए सहायक है। यहाँ उत्पादित गाजर स्थानीय बाजारों में ही नहीं बल्कि अहमदाबाद, जयपुर, मुम्बई, बेंगलोर जैसे प्रमुख शहरों में अपनी खास पहचान बनाकर अधिक मूल्य अर्जित कर किसानों को लाभ पहुँचा रही है। पौषक तत्वों से भरपूर पौधों के ऊपरी हिस्से (पत्तियाँ), जिनमें प्रोटीन, खनिज लवण तथा विटामिन्स अच्छी मात्रा में पाये जाते हैं, का उपयोग पशुओं के लिए हरे चारे के रूप में किया जाता है, जिसकी उपलब्धता आमतौर पर शुष्क क्षेत्रों में एक प्रमुख समस्या है। इस प्रकार इसके उत्पादन से गाजर के साथ-साथ हरा चारा भी मिल जाता है।

इस क्षेत्र में मुख्यतः एशियाई गाजर की खेती की जाती है जो यूरोपीय गाजर की अपेक्षा अधिक तापमान सहन कर सकती है एवं इससे उत्पादन भी अधिक प्राप्त होता है। गाजर की बुवाई यहाँ कई बार की जाती है जिससे बाजार में इनकी उपलब्धता नवम्बर से शुरू होकर लगभग फरवरी अन्त तक लगातार बनी रहती है। कम लागत में अधिक आय देने के साथ-साथ अल्प समय में तैयार होने वाली फसल होने के कारण रबी के मौसम में अन्य फसलों की अपेक्षा गाजर की खेती यहाँ के सिंचित

क्षेत्र के किसानों की पहली पसंद बनती जा रही है। अच्छी तरह से खेती कर इस फसल की निर्यात में काफी सम्भावनाएँ हैं। इस क्षेत्र में गुणवत्तापूर्ण गाजर के अधिक उत्पादन हेतु क्षेत्र में विस्तार के साथ-साथ इसकी उन्नत उत्पादन तकनीकी को अपनाकर किसान भाई इसकी खेती को और लाभकारी बना सकते हैं।

किस्म का चुनाव

लम्बी अवधि तक बाजार में गाजर की उपलब्धता बनाए रखने के लिए अधिक तापमान सहन करने में सक्षम एशियाई गाजर इस क्षेत्र के लिए यूरोपीय गाजर की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। इसके अलावा इनसे उत्पादन भी अधिक प्राप्त होता है। अच्छे उत्पादन हेतु इसकी उन्नतशील किस्मों का चयन महत्वपूर्ण है। पूसा केसर, पूसा रूधिरा, पूसा मेघाली, सलेक्शन-21, सलेक्शन-233, सुपर रेड आदि एशियाई गाजर की प्रमुख किस्में हैं।

बीज एवं बुवाई

बुवाई हेतु उन्नतशील किस्मों के चुनाव के अलावा बीजों का स्वस्थ होना भी अत्यन्त आवश्यक है। बीज की मात्रा बुवाई के समय, भूमि के प्रकार, बीज की गुणवत्ता, आदि पर निर्भर करती है, जो प्रति हैक्टेयर 5-8 कि.ग्रा. तक हो सकती है। अगेती फसल की बुवाई हेतु अपेक्षाकृत अधिक बीज की आवश्यकता पड़ती है। हल्की क्षारीय भूमि में तथा बुवाई पश्चात पपड़ी बनने की दशा में सघन बुवाई करने की वजह से बीज की मात्रा बढ़ जाती है। गाजर की बुवाई अगस्त से लेकर नवम्बर तक की जा सकती है, परन्तु अक्टूबर में बोई जाने वाली फसल उत्पादन तथा गुणवत्ता दोनों दृष्टि से सर्वोत्तम मानी जाती है। भारी मिट्टी में बुवाई मेड़ों, पर जबकि रेतीली में समतल क्यारियों में करनी चाहिए। बुवाई क्यारियों में 1-2 से.मी. गहराई पर 30-40 से.मी. की दूरी पर बनी पंक्तियों में करनी चाहिए। बीजों को बारीक छनी हुई रेत में मिलाकर बुवाई करने से बीजों का वितरण समान होता है तथा बीज भी कम लगता है। बीज को 12-24 घंटे तक पानी में भिगोने के पश्चात छाया में सुखाकर बुवाई करने से बीज आसानी से व जल्दी उगते हैं। बुवाई से पूर्व बीजों को राख के साथ रगड़ना भी जमाव के लिए अच्छा माना गया है। बीज उगने के 2-3 सप्ताह के भीतर प्रत्येक पंक्ति में लगभग 5-7 से.मी. की दूरी छोड़कर फलतू पौधों को निकाल देना चाहिए, इससे पौधों की बढ़वार के लिए पर्याप्त स्थान मिलता है तथा जड़ों का विकास भी अच्छा होता है।

फसल उत्पादन शस्य क्रियाएँ

गाजर एक ठण्डी जलवायु की फसल है। इसके बीज का जमाव 7-24° से. तक आसानी से हो जाता है। अच्छे जड़ विकास एवं रंग हेतु 16-21° से. तापक्रम उत्तम

पाया गया है। इसकी खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है, परन्तु उचित जल निकास वाली जीवान्श युक्त रेतीली अथवा रेतीली दोमट मिट्टी इसकी सफल खेती के लिए उत्तम होती है। भारी मिट्टी में इसकी जड़ों का आकार व रंग अच्छा नहीं बन पाता। 6.5-7 पी.एच. मान वाली भूमि इसकी खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है, परन्तु इसे लगभग 8 पी.एच. मान तक सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। गाजर की अच्छी फसल के लिए भूमि को अच्छी तरह से तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है। भूमि की लगभग 1 फुट की गहराई तक अच्छी तरह से जुताई करनी चाहिए, जिसके लिए एक बार डिस्क हल से गहरी जुताई तथा तीन-चार बार हैरो चलाकर पाटा लगा देना चाहिए ताकि मिट्टी एकदम भुरभुरी हो जाये।

गाजर की अच्छी पैदावार हेतु बुवाई से लगभग 2-3 सप्ताह पूर्व 20-25 टन प्रति हैक्टेयर पूर्णतया सड़ी हुई गोबर की खाद को खेत में भली भाँति मिला देनी चाहिए। उर्वरकों को अन्तिम जुताई के समय भूमि में मिलाकर आवश्यकतानुसार मेड़े तथा क्यारियां बना लेनी चाहिए। उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी की जाँच के आधार पर करना चाहिए। सामान्य भूमि की दशा में 100 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर प्रयोग करना चाहिये। नत्रजन की आधी तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा अन्तिम जुताई के समय तथा नत्रजन की शेष बची आधी मात्रा बुवाई के लगभग एक माह पश्चात निराई-गुड़ाई के समय देना चाहिए। नत्रजन को अधिक मात्रा में तथा देरी से देने से बचना चाहिए क्योंकि इसकी वजह से गाजर पर सफेद सूक्ष्म रोम तो अधिक बनते ही हैं साथ ही साथ गाजर की भण्डारण क्षमता पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है, जिससे दूरस्थ बाजारों में भेजी जाने वाली गाजर का परिवहन के दौरान जल्द खराब हो जाने से इनका बाजार मूल्य कम मिलता है।

गाजर के बीज का जमाव धीरे व कुछ देरी से होता है, जिसके लिए बुवाई के पश्चात शीघ्र एक हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। भूमि में पर्याप्त नमी बनाये रखने के लिए आवश्यकतानुसार 5-7 दिन के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। कम सिंचाई की दशा में जड़ें सख्त हो जाती हैं व इनमें कसैलापन भी आ सकता है, जबकि आवश्यकता से अधिक सिंचाई करने से गाजर की जड़ों में मिठास कम हो जाता है।

फसल को बुवाई से लगभग 4-6 सप्ताह तक खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए। इसके लिए बुवाई के तीसरे तथा पाँचवे सप्ताह में खरपतवार निकालने के साथ-साथ खुरपी भी लगा देनी चाहिये। यदि फसल मेड़ पर बोई गई है तो गुड़ाई के साथ-साथ मेड़ों पर मिट्टी भी चढ़ा देनी चाहिये। खरपतवार नाशी रसायनों जैसे पेन्डीमिथेलिन अथवा नाइट्रोफेन की 1 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई से 2 दिन के अन्दर छिड़काव करने से खरपतवारों से निजात मिल जाती है।

गाजर की खुदाई एवं सफाई

गाजर बुवाई के पश्चात 95-110 दिन के भीतर खुदाई के लिए तैयार हो जाती है, परन्तु यह प्रायः इसकी किस्म, बुवाई का समय, भूमि के प्रकार, आदि पर निर्भर करती है। जड़ों के तैयार हो जाने पर एक हल्की सिंचाई देकर अगले दिन खुदाई करनी चाहिए। खुदाई हमेशा ठंडे मौसम में अर्थात् सुबह के समय करना अच्छा रहता है। खुदाई के पश्चात जड़ों पर लगी मिट्टी हटाने के लिए इन्हें पानी से सफाई करते हैं। इस क्षेत्र में गाजर की जड़ों की सफाई हेतु एक विशेष प्रकार की मशीन का प्रयोग किया जाता है, जिससे इन पर लगी हुई मिट्टी की सफाई के साथ-साथ जड़ों पर लगे सूक्ष्म रोम तथा ऊपरी हल्की सफेद झिल्ली भी साफ हो जाती है जिससे गाजर साफ और आकर्षक दिखने लगती है और बाजार भाव अच्छा मिलता है। यह मशीन हाथ से अथवा ट्रैक्टर, बिद्युत मोटर या डीजल इंजन द्वारा पुली व शाफ्ट के जरिये चलाई जाती है तथा आधे घण्टे के अन्दर गाजर की अच्छी तरह से सफाई कर देती है। हस्त चालित मशीन एक बार में 10-15 कि.ग्रा. गाजर की सफाई करती है, जिसकी कीमत लगभग 4-5 हजार रुपये, जबकि ट्रैक्टर, विद्युत मोटर या डीजल इंजन द्वारा चालित मशीन इसकी कार्य क्षमता के अनुसार, जो कि 1-5 क्विंटल प्रति लोड तक होती है, जिसकी कीमत लगभग 20 से लेकर 50 हजार रुपये तक होती है।

उपज

गाजर की पैदावार एवं गुणवत्ता किस्म, बुवाई के समय, भूमि के प्रकार, आदि पर निर्भर करती है। इसकी अगेती फसल (अगस्त बुवाई) से औसतन लगभग 20-25, मध्यम फसल (सितम्बर-अक्टूबर बुवाई) से 30-40 तथा देर वाली फसल (नवम्बर बुवाई) से 28-32 टन प्रति हैक्टेयर तक उत्पादन प्राप्त होता है।

फसल सुरक्षा

इस क्षेत्र में आमतौर पर गाजर की फसल में कीट व बीमारियों का प्रकोप कम होता है। कभी-कभी देर वाली फसल में फफूँद जनित सफेद चूर्णिल आसिता नामक बीमारी का प्रकोप होता है। इस बीमारी के लगने से पत्तों एवं उठल पर सफेद धब्बे नजर आने लगते हैं जो आगे चलकर बादामी रंग के हो जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 0.1 प्रतिशत बेनलेट अथवा बावस्टीन के घोल का छिड़काव 8-10 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।



खजूर की व्यवसायिक खेती

पी.आर. मेघवाल एवं प्रदीप कुमार

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342 003

खजूर गर्म-शुष्क जलवायु में पनपने वाला एक महत्त्वपूर्ण फल वृक्ष है। पामेसी कुल से सम्बंध रखने वाले इस फलदार वृक्ष का वानस्पतिक नाम *फोनिक्स डेक्टिलीफेरा* है। व्यवसायिक दृष्टि से इसकी खेती मिश्र, इरान, सउदी अरब, इराक, पाकिस्तान, मोरक्को ओमान इत्यादि देशों में प्रमुख रूप से की जाती है और ये देश कुल मिलाकर विश्व के लगभग 90 प्रतिशत फलों का उत्पादन करते हैं। भारत में खजूर की खेती मुख्यतः गुजरात के कच्छ-भुज, मांडवी व पंजाब के अबोहर जिले में की जाती है। राजस्थान के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में खजूर की खेती की जा सकती है लेकिन इसकी सफल खेती के लिए पर्याप्त मात्रा में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

जलवायु एवं भूमि

खजूर की व्यवसायिक खेती के लिए लम्बी गर्म शुष्क ग्रीष्म ऋतु तथा फल पकते समय वर्षा व आर्द्रता रहित वातावरण की आवश्यकता होती है। गर्मी में यह अधिकतम 50° से.ग्रे. तक का तापमान सहन कर सकता है लेकिन लम्बे समय तक कम तापमान (-6.7° से.ग्रे. या इससे कम) में इसकी पत्तियों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। फूल आने तथा फल पकने के दौरान 25-29° से.ग्रे. तापमान सबसे अच्छा रहता है। फलों की उत्तम परिपक्वता के लिए 3000 हीट यूनिट की जरूरत पड़ती है। राजस्थान के ज्यादातर पश्चिम-उत्तरी जिलों में 3000 या इससे अधिक हीट यूनिट उपलब्ध है। इससे यह कहा जा सकता है कि इन जिलों में जहाँ सिंचाई की व्यवस्था हो खजूर की खेती की जा सकती है। एक अरेबियन कहावत के अनुसार इसका सिर तपती गर्मी में तथा जड़े पानी में रहनी चाहिए। इसके फलों के विकास की चार अवस्थाएँ होती हैं जिसमें 'गन्डोरा' व 'डोका' अवस्था में वर्षा या अधिक आर्द्रता से नुकसान नहीं होता है, जबकि 'पिण्ड' व 'डेंग' अवस्था, जो कि जुलाई-अगस्त में आती है, को वर्षा नुकसान पहुँचा सकती है। इस अवस्था में वर्षा व अधिक आर्द्रता से फलों में सड़ांध पैदा हो सकती तथा गुणवत्ता में कमी आ सकती है। राजस्थान के अधिकांश भागों में भूमिगत जल लवणीय होता है। चूँकि खजूर काफी हद तक लवणता सहन कर सकता है, ऐसे पानी का सदुपयोग खजूर की खेती के लिए किया जा सकता है। खजूर की खेती बलुई दोमट मिट्टी में जीवांश खाद मिलाकर की जा सकती है। लवणीय मृदा जिसका पी.एच. मान 8.5 तक हो, उसमें भी खजूर की खेती संभव है। फूल आने से पहले व फलों के

पकने तक खजूर को अत्यधिक पानी की आवश्यकता होती है, अतः इसकी सफल खेती के लिए सिंचाई का समुचित प्रबंध होना अति आवश्यक है।

उन्नत किस्में

खजूर की किस्मों को 'पिण्ड' अवस्था में फलों के गूदे के गाढेपन या भराव के आधार पर मुलायम, अर्द्धशुष्क एवं शुष्क, तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। मुलायम श्रेणी के फलों की 'पिण्ड' अवस्था में पूरी शर्करा अपचित शर्करा (इनवर्ट शुगर) में परिवर्तित हो जाती है तथा उनमें सुक्रोज की मात्रा नगण्य रह जाती है। उदाहरण के लिए हलावी, खदरावी, मेडजूल, शामरान, बरही, खलास व ह्यानी इत्यादि। अर्द्धशुष्क किस्मों की श्रेणी के फलों में पूर्ण परिपक्वता पर मुख्य तौर पर सुक्रोज होती है तथा अपचित शर्करा की मात्रा बहुत कम होती है, थूरी, डेगलेटनूर, जहीदी तथा डायरी किस्में इसमें आती हैं। खजूर की विश्व में 1000 से भी ज्यादा किस्में विकसित हो चुकी हैं, लेकिन केवल कुछ चुनिन्दा किस्मों की खेती व्यापारिक तौर पर विभिन्न देशों में की जाती है। इराक की हलावी, खदरावी, सायर, बरही व जहीदी, उत्तर अफ्रीकी देशों की डेगलेटनूर, मेडजूल तथा पाकिस्तान की बेगम जगी तथा ढक्की प्रमुख हैं। बरही, हलावी, मस्कट-2, खुनेजी व खलास किस्में ताजे फल खाने के लिए उपयुक्त पाई गई हैं। अन्य किस्में जैसे मेडजूल, शामरान, खदरावी के फल डोका अवस्था में कसैले होते हैं लेकिन इन किस्मों को छुहारा बनाने तथा विलम्ब से वर्षा होने की स्थिति में पिण्ड फल उत्पादन के लिए भी सोचा जा सकता है।

सारणी 1: खजूर की विभिन्न किस्में एवं उपयोगिता

क्र.सं.	उपयोग	किस्मों के गुण	उपयुक्त - किस्में
1	ताजा फल खाने के लिए	डोका अवस्था में फलों में कसैलापन न हो तथा मीठापन अधिक हो	बरही, हलावी, खलास, खुनेजी, सेवी, मस्कट-2
2	छुहारा बनाने के लिए	फल कड़े व गुदे की मोटाई अधिक हो।	मेडजूल, खदरावी, शामरान
3	पिण्ड खजूर के लिए	फल तुड़ाई के समय पूर्ण डांग अवस्था प्राप्त कर ले।	जहीदी, खदरावी, हलावी, खलास, शामरान व जगलूल
4	रस व अन्य परीरक्षित पदार्थ बनाने के लिए	ज्यादा मात्रा में फल रस व महक	जगलूल, हलावी, सूरिया तथा उमशोक इत्यादि

भारत में खजूर की किस्में मूलतः खाड़ी देशों से आयातित हैं। काजरी में पिछले कई वर्षों के अनुसंधान के आधार पर पाया गया है कि भारत में खजूर की खेती के लिए वो किस्में उपयुक्त हैं जो जून-जुलाई तक 'डोका' अवस्था में आ जाये तथा इस अवस्था में मीठी व कसैलापन रहित हों।



शुष्क क्षेत्रों में खजूर की खेती



काजरी द्वारा तैयार किए गए विभिन्न उत्पाद

प्रमुख किस्मों की विशेषता

बरही: यह इराक की प्रसिद्ध किस्म है। इसके फल मध्यम आकार के व डोका अवस्था में पीले रंग के होते हैं, फल का औसत वजन लगभग 14 ग्राम तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 30-35 प्रतिशत होता है। यह किस्म मध्यम देरी से पकने वाली है तथा 'डोका' अवस्था में फल मीठे व स्वादिष्ट होते हैं। ताजे फलों के लिए सबसे उपयुक्त किस्म हैं। पैदावार 200 किलो प्रति पेड़ होती है।

मेडजूल: यह एक देर से पकने वाली किस्म है, जिसके फल काफी बड़े आकार के, 20-40 ग्राम वजनी व 'डोका' अवस्था में पीले रंग के होते हैं। 'डोका' अवस्था में कुल घुलनशील पदार्थ 34.5 प्रतिशत होता है फिर भी फल कसैले स्वाद के होते हैं लेकिन इसमें वर्षा से कम नुकसान होता है। यह किस्म छुहारा बनाने के लिए भी उपयुक्त है।

खलास: इस किस्म के फल 'डोका' अवस्था में पीले रंग के तथा मीठे होते हैं, औसत वजन 15 ग्राम तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 25 प्रतिशत तथा मध्यम-देरी से पकने वाली किस्म है।

हलावी: इस किस्म के फल 'डोका' अवस्था में पीले रंग के तथा मीठे होते हैं। औसत वजन 15 ग्राम तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 31 प्रतिशत होता है। यह एक अगेती तथा ताजे फल खाने के लिए उपयुक्त किस्म है।

जेहीदी: इसके फल 'डोका' अवस्था में पीले रंग के तथा कसैले होते हैं। इसका छिलका ठोस तथा चिकना होने के कारण वर्षा के कम नुकसान होता है। फलों का औसत वजन लगभग 10 ग्राम तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 35.5 प्रतिशत होते हैं। यह एक देर से पकने वाली किस्म है जो कि पिण्ड अवस्था के फलों के लिए उपयुक्त है।

खदरावी: इस किस्म के फल 'डोका' अवस्था में पीला-हरापन लिए हुए हैं तथा कसैले होते हैं। औसत वजन लगभग 13 ग्राम तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 36 प्रतिशत होता है। यह मध्यम देरी से पकने वाली किस्म है जिसमें 'डोका' अवस्था व 'डेंग' अवस्था में वर्षा व अधिक आर्द्रता से हानि होती है।

शामरान: इस किस्म के फल 'डोका' अवस्था में हल्की बैंगनी झाँई लिए हुए पीले रंग के तथा कसैले होते हैं। फलों का औसत वजन 13 ग्राम तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 34.5 प्रतिशत होता है। फल मध्यम परिपक्वता अवधि के होते हैं।

खुनेजी: इस किस्म के फल 'डोका' अवस्था में लाल रंग के तथा मीठे होते हैं, गुदा कुरकुरा तथा स्वादिष्ट होता है। औसत वजन 10 ग्राम तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा 43 प्रतिशत होती है। यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है।

जगलूल: इस किस्म के फल 'डोका' अवस्था के लाल रंग के व कसैले होते हैं। फलों का औसत वजन 11 ग्राम तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा 28 प्रतिशत होता है। यह भी देरी से पकने वाली किस्म है।

मस्कट-2: यह भी एक जल्दी पकने वाली किस्म है। डोका अवस्था में फलों का रंग लाल, बैंगनी तथा स्वाद मीठा व कसैलापन रहित होता है। औसत वजन लगभग 11 ग्राम तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 33 प्रतिशत होता है। यह किस्म भी 'डोका' अवस्था में ताजे फलों के लिए उपयुक्त है।

इसके अतिरिक्त गुजरात के समुद्र तटीय क्षेत्रों में बीजू पौधों से चयनित किये गये कुछ पेड़ फलत में उत्तम पाये गये हैं। इनके फल 'डोका' अवस्था में पीले, लाल तथा गुलाबी रंग के होते हैं तथा इसमें कई मीठे फलों वाली किस्मों को वानस्पतिक पद्धति से तैयार किया जाता है ताकि उनकी गुणवत्ता बनी रहे।

पौधे तैयार करना

खजूर के पौधों में नर व मादा फूल अलग-अलग पौधों पर आते हैं। एक बीजपत्री होने के कारण खजूर के पौधों में कायिक प्रवर्धन के अन्य तरीकों जैसे कलम, ग्राफिटिंग, बडिंग, गूटी इत्यादि विधियों से पौधे तैयार करना संभव नहीं हैं। इसका प्रसारण, बीज, सकर्स व उत्तक संवर्धन (टीश्यूकल्चर) विधियों से किया जा सकता है।

बीज द्वारा पौधे तैयार करने से मातृ पौधों की गुणवत्ता का भरोसा नहीं रहता, तथा इस प्रकार पौधे तैयार करने से नर व मादा पौधे आधी-आधी मात्रा में निकलते हैं जिसका पता 5-6 वर्ष पश्चात् फूल आने पर ही लग सकता है। इसलिए खजूर का प्रसारण पारम्परिक तौर पर अच्छी गुणवत्ता वाले मातृ पेड़ों के सकर्स (अन्तः भूस्तारी) द्वारा किया जाता है।

सकर्स (आफशूट) द्वारा प्रसारण

सकर्स द्वारा पौधे तैयार करने से मातृ पौधों के शत-प्रतिशत गुण नये पौधों में हस्तान्तरित हो जाते हैं तथा नर पौधे से सकर्स लेने पर नर पौधों तथा मादा पौधों से सकर्स लेने पर केवल मादा पौधे प्राप्त होते हैं। इस प्रकार तैयार पौधों में फूल व फल भी जल्दी आते हैं। एक पौधे से एक वर्ष में 2-3 सकर्स निकलते हैं जो कि 4-5 वर्ष की अवस्था से शुरू होकर 10-15 वर्ष की उम्र तक बनते रहते हैं। अतः एक मातृ वृक्ष से औसतन 20-25 सकर्स ही पूरे जीवनकाल में लिए जा सकते हैं। सकर्स द्वारा पौधे तैयार करने के लिए पेड़ों के तने के पास मिट्टी चढ़ाई जाती है। जब सकर्स निकलना शुरू हो जाते हैं तब उसके नीचे की मिट्टी हटाकर मिट्टी व खाद के मिश्रण को उसके चारों तरफ लगाकर गनी बैग से बाँध दिया जाता है, तथा उसको समय-समय पर पानी

देकर नम रखा जाता है। इस तरह साल भर देखभाल करने से सकर्स की नई जड़े गनी बैग में भरी खाद व मिट्टी के मिश्रण में विकसित हो जाती है। जब सकर्स का वजन 10-12 किलो हो जाता है तब इसको सावधानी से मातृ पौधों से एक विशेष प्रकार के चीजल व हथौड़े द्वारा काट कर अलग कर लिया जाता है। इसको तुरन्त दूसरे खेत में लगा देना चाहिए।

टीश्यूकल्चर विधि द्वारा प्रसारण

सकर्स द्वारा प्रर्याप्त मात्रा में पौधे तैयार न कर पाने तथा बीजू पौधों की गुणवत्ता का भरोसा नहीं रहने के कारण टीश्यू कल्चर द्वारा प्रसारण ही एक मात्र विकल्प है। इस विधि से पौधे तैयार करने के कई फायदे हैं।

1. गुणवत्ता वाले पौधों को हूबहू बड़ी संख्या में तैयार कर पाना।
2. वर्षभर पौधे तैयार कर सकना - मौसम पर निर्भरता नहीं।
3. पौधों का कहीं भी परिवहन किया जा सकता है।

विश्व की कई प्रयोगशालाओं में खजूर के पौधे व्यवसायिक स्तर पर इस पद्धति तैयार किये जाते हैं लेकिन हरेक कम्पनी का अपना प्रोटोकॉल होता है जो कि व्यवसायिक कारणों से सार्वजनिक नहीं करते हैं।

फसल उत्पादन तकनीक

पौधे लगाना: खजूर के पौधों की फलतः अवधि लगभग 40-50 वर्ष होती है, इसलिए इसको उचित फासले पर लगाना अत्यावश्यक होता है। इसमें कतार से कतार व पौधे से पौधे की दूरी 8 मी. रखते हैं ताकि विभिन्न कृषि क्रियाएँ करने में असुविधा न हो। 8 मी. की दूरी पर पौधे लगाने से एक हैक्टेयर में 156 पौधे लगते हैं। कुल पौधों में 5 प्रतिशत नर पौधे भी परागण के लिए लगाने आवश्यक होते हैं। पौधे लगाने के लिए एक घन मी. आकार के गड्ढे खोदे तथा इनके पैन्डे व दीवार में एन्डोसल्फान 4 प्रतिशत चूर्ण या क्यूनालफास 1.5 चूर्ण, 100 ग्राम प्रति गड्ढे के हिसाब के प्रयोग करें। गड्ढे को गोबर की खाद (15 किलो प्रति पेड़) व ऊपरी मिट्टी के मिश्रण से भर देना चाहिए। अन्तः भूस्तारी को रोपने से पहले 0.2 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के घोल में उपचारित करके लगावें। पौधों को सीधा लगाना चाहिए तथा उसका शीर्ष भाग जमीन से 15-20 से.मी. ऊपर रहना चाहिए। जिससे कि सिंचाई जल से क्षतिग्रस्त न हो। रोपाई पश्चात् तुरन्त सिंचाई करें तथा शुरु के एक महीने में नमी बनाकर रखने का विशेष ध्यान रखे।

सिंचाई: खजूर में सफल उत्पादन के लिए सिंचाई आवश्यक है हालांकि एक बार पौधे भली-भाँति स्थापित हो जाने के पश्चात् बिना सिंचाई के भी पौधे काफी दिनों तक जिन्दा रह सकते हैं क्योंकि इनमें सूखा सहन करने की जबरदस्त क्षमता होती है लेकिन

फल उत्पादन के लिए समय पर सिंचाई अति आवश्यक होती है। सकर्स या टिश्यू कल्चर से तैयार पौधों को लगाने के प्रथम छः महीने तक सिंचाई कम अन्तराल पर देना आवश्यक है क्योंकि उस अवधि में पौधे भूमि में स्थापित हो रहे होते हैं। पूर्ण रूप से स्थापित हो जाने के पश्चात् गर्मियों में सप्ताह में एक बार व सर्दियों में दो सप्ताह में सिंचाई करनी चाहिए। हालांकि बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति अपनाने पर रोज या एक रोज छोड़कर निश्चित मात्रा में पानी नियमित रूप से छोड़ना चाहिए। खजूर के फल वृक्षों में समुचित वानस्पतिक वृद्धि एवं फलत प्राप्त करने के लिए 2 मी. गहराई तक जमीन में नमी रहनी चाहिए। खजूर के थांवलों में खजूर की सूखी पत्तियाँ व अन्य घास-फूस बिछाकर या काले पॉलीथीन की पलवार बिछाकर नमी संरक्षित कर सिंचाई के अन्तराल को बढ़ा सकते हैं।

अन्तरकास्त: चूंकि खजूर के वृक्ष 8 मी. के फासले पर लगाये जाते हैं, पेड़ों के बीच काफी खाली स्थान बना रहता है जिसको कम अवधि की फसलें लगाकर समुचित उपयोग किया जा सकता है। इस स्थान पर दलहनी फसलें जैसे चना, मसूर, ग्वार, मटर, सरसों, अन्य सब्जियाँ व चारे वाली फसलें जैसे बरसीम, फलदार पेड़ जैसे अनार, पीता, फाल्सा एवं नींबू इत्यादि लगा सकते हैं।

पोषण प्रबंधन: खजूर के पेड़ों के उचित वानस्पतिक वृद्धि एवं उपज के लिए समुचित पोषण अति आवश्यक है। पूर्ण विकसित पेड़ों को प्रतिवर्ष 40 कि.ग्रा. गोबर की खाद अथवा 30 किलो भेड़ बकरी की मींगणी की खाद अगस्त-सितम्बर माह में थालों में एक फुट गहरा खोद कर मिलाना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष लगभग एक कि.ग्रा. नत्रजन, 500 ग्राम फॉस्फोरस व 500 ग्राम पोटाश की भी आवश्यकता होती है। फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा फूल आने से एक माह पहले तथा शेष बची नत्रजन को फल लगने के पश्चात् मार्च-अप्रैल में देना चाहिए।

कटाई-छँटाई: खजूर के पेड़ों को आमतौर पर शुरू के 4-5 वर्ष तक कटाई-छँटाई की आवश्यकता नहीं रहती है परन्तु इसके बाद हर वर्ष नीचे से पुरानी पत्तियों तथा अन्तः भूस्तारी को पूर्ण विकसित होने के पश्चात् निकालना होता है। अच्छी फसल हेतु पूर्ण विकसित पेड़ पर 75-100 पत्तियाँ होनी चाहिए। पुरानी पत्तियों को निकालने का उपयुक्त समय फलों की तुड़ाई के पश्चात् नवम्बर-दिसम्बर माह होता है। (भारतीय परिदृश्य में) फल गुच्छों से सटी हुई पत्तियों के डण्डल से काँटे निकालना भी जरूरी होता है ताकि इनके आसपास के विभिन्न कार्य जैसे परागण, फल गुच्छों की छँटाई, छिड़काव, थैलियाँ बाँधना, फलों की कटाई इत्यादि सुगमता से हो सके।

परागण: खजूर में नर एवं मादा पुष्प क्रम अलग-अलग पेड़ों पर बनते हैं तथा प्राकृतिक तौर पर परागण हवा द्वारा संपन्न होता है। उस दशा में नर व मादा पेड़ों की संख्या

लगभग बराबर होनी चाहिए लेकिन इस दशा में प्रति हैक्टेयर फल उत्पादन लगभग आधा हो जाता है क्योंकि फल सिर्फ, मादा पेड़ों पर ही लगते हैं। इस समस्या से निजात पाने के लिए कृत्रिम परागण किया जाता है और उस दशा में केवल 5 प्रतिशत नर पौधे पर्याप्त होते हैं। कृत्रिम परागण हाथ द्वारा परागकणों को रूई की सहायता से मादा पुष्प क्रमों पर पुष्पों के खिलने के तुरन्त पश्चात् प्रातःकाल छिड़ककर किया जाता है। सभी लड़ियों में तीन बार परागण करना चाहिए। नर पुष्प क्रमों की ताजी खिली हुई लड़ियों को मादा पुष्पक्रमों के साथ बाँध कर भी परागण किया जा सकता है। परागकणों को बाद में इस्तेमाल करने के लिए संग्रहित भी किया जा सकता है। इसके लिए ताजे व पूर्ण रूप से खिले हुए नर पुष्प क्रमों को अखबार के कागज पर झिड़क कर एकत्रित कर लेते हैं तथा बारीक छलनी से छान लेते हैं। इसके बाद इन्हें 6 घंटे धूप में व 18 घंटे छाया में सुखाकर काँच की शीशियों में भरकर सामान्य ताप पर 8 सप्ताह तथा फ्रीज में 1 वर्ष तक संग्रहित किया जा सकता है।

फल गुच्छों की सघाई एवं छंटाई

कृत्रिम परागण विधि अपनाने पर अत्यधिक मात्रा में फल बनते हैं। आवश्यकता से अधिक संख्या में फल लगने पर गुच्छों का समुचित विकास नहीं होता है तथा फलों का आकार, वजन एवं गुणवत्ता पर असर पड़ता है। इसलिए प्रति वृक्ष गुच्छों की संख्या 5-20 रखी जाती है जो कि किस्म, वृक्ष की आयु एवं वानस्पतिक वृद्धि पर निर्भर करती है। अतिरिक्त फल गुच्छों को तुरन्त निकाल देना चाहिए। प्रत्येक फल गुच्छे की एक तिहाई लड़ियों को निकाल देने से फल शीघ्र, भली-भाँति एवं उच्च गुणवत्ता वाले तैयार होते हैं। यह कार्य फल बनने के तुरन्त पश्चात् कर देना चाहिए।

फलों का विकास

खजूर के फलों के विकास की 5 अवस्थाएँ होती हैं जिसे अच्छी तरह समझ लेना अत्यावश्यक है। विभिन्न अवस्थाओं की अवधि तथा उनकी विशेषताएँ नीचे सारणी में दी जा रही हैं।

सारणी 2: खजूर के फलों के विकास की अवस्थाएँ, अवधि एवं विशेषताएँ

क्र.सं.	अवस्था	अवधि (परागण के बाद)	विशेषताएँ
1.	हबाबुक	4 सप्ताह	अपरागित फूल झड़ जाते हैं।
2.	किमरी अथवा गंडोरा	13 सप्ताह	फल बनकर हरे रंग के होते हैं।

क्र.सं.	अवस्था	अवधि (परागण के बाद)	विशेषताएँ
3.	खलाल अथवा डोका अवस्था	17-18 सप्ताह	फल पूर्ण विकसित होकर पीले या लाल रंग में बदल जाते हैं। 10-15 ग्राम वजन, कुल घुलनशील ठोस 30-45, नमी 50-65 प्रतिशत, फल मीठे या कसैले किस्म के अनुसार।
4.	रूतब या डांग अवस्था	22 सप्ताह	फल नीचे के सिरे से मुलायम होना शुरू करते हैं तथा धीरे-धीरे पूरा फल मुलायम हो जाता है। फलों के भार में कमी तथा कुल घुलनशील ठोस 60 प्रतिशत।
5.	तमर अथवा पिण्ड अवस्था	23 सप्ताह	पूर्णतः पका फल, भार में कमी, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 60-84 प्रतिशत, खाने लायक।

कीट व्याधियों का नियंत्रण

भारतीय परिस्थितियों में अब तक कोई कीट या बीमारी से ज्यादा नुकसान होना नहीं होना पाया गया है। उत्तर-पश्चिमी भारत में दीमक, थ्रिप, स्केल कीड़े तथा रीनोसीरोज बीटल, पाम विविल इत्यादि से नुकसान हो सकता है। गुजरात के कच्छ क्षेत्र में काले सिर वाली लट से काफी नुकसान होता है। यह खजूर के तने में छिप कर पत्तियों को खाती है। इसके अलावा लाल रंग का पाम विविल खजूर के तने में घुसकर नुकसान पहुँचाता है। इसके नियंत्रण के लिए पेड़ के तने के चारों तरफ एन्डोसल्फान पाउडर का भुरकाव करना चाहिए तथा बगीचे को साफ-सुथरा रखें। लाल रंग के पाम विविल का कीड़ा अगर ट्रंक में घुस जाए तो डाइक्लोरवास दवा छेद के अन्दर छोड़नी चाहिए। इससे कीड़े दम घुट कर मर जाते हैं।

बीमारियों में फाल्स स्मट या ग्रेफियोला पत्ती धब्बा रोग खजूर की पत्तियों को काफी नुकसान पहुँचाता है इसका कोई शत-प्रतिशत नियंत्रण संभव नहीं है। बाविस्टीन 0.2 प्रतिशत घोल या बोरडो घोल के छिड़काव से कुछ हद तक नियंत्रण किया जा सकता है। रोगग्रस्त पत्तियों को काट कर जलाने से भी बीमारी का फैलाव रोका जा सकता है। इसके अतिरिक्त डेंग व पिण्ड अवस्था में वर्षा होने या अधिक आर्द्रता होने पर फलों का सड़ना आम बात है जिसकी रोकथाम लगभग नामुमकिन है।

पक्षियों से नुकसान व नियंत्रण के उपाय

खजूर के फलों को 'डोका' व उसके बाद की अवस्थाओं में पक्षियों द्वारा अत्यधिक नुकसान होता है अगर कोई नियंत्रण के उपाय न किए जाए तो शत-प्रतिशत फल पक्षियों द्वारा नष्ट कर दिए जाते हैं। भारतीय परिस्थितियों में यह और भी ज्यादा

होता है क्योंकि यहाँ पर खजूर के बाग इक्के-दुक्के ही होते हैं तथा उस समय पक्षियों के खाने के लिए दूसरे फल कम उपलब्ध होते हैं। खजूर के फलों को तोता, मैना, बुलबुल व कौआ ज्यादा हानि पहुँचाते हैं। फल गुच्छों को जंगरोधी लोहे की जाली (3 x 3 मि.मी. छेद) से बने पिंजरो से ढककर काफी हद तक नुकसान रोका जा सकता है। गुच्छों को पॉलीथीन के ढक्कन, जो कि नीचे से खुले हो, से भी नुकसान रोका जा सकता है। हालांकि ऐसा करने से फलों में फफूँद लगने का खतरा बना रहता है।

अन्य समस्याएँ

राजस्थान में गर्मियों (मई + जून) व कभी-कभी जुलाई अगस्त तक धूल भरी आँधियाँ चलती है। उस समय अगर खजूर के फल डेंग अवस्था या पिण्ड अवस्था में हो तो मिट्टी के कण चिपे-चिपे फलों पर चिपक सकते हैं जिससे फलों की गुणवत्ता व बाजार मूल्य प्रभावित हो सकते हैं।

फलों की तुड़ाई

अरब देशों में खजूर के फल पूर्ण परिपक्व (पिण्ड या तमर) होने पर ही तोड़े जाते हैं। फलों का पूरा गुच्छा काट कर अच्छे फल छाँट लिए जाते हैं। उन देशों में भू-मध्य सागरीय जलवायु होने के कारण वर्षा अक्टूबर के बाद ही होती है तब तक फल पेड़ पर ही पक जाते हैं तथा वर्षा द्वारा कोई बाधा नहीं पहुँचती है। हमारे देश में फल पकने की अवस्था के दौरान वर्षा प्रारंभ हो जाती है। इसलिए यहाँ पर फल अधिकतर जगहों पर डोका अवस्था में ही तोड़ने पड़ते हैं। कभी-कभी वर्षा जुलाई के अन्त तक या 15 अगस्त तक विलम्ब से होती है, तब डांग या पिण्ड अवस्था प्राप्त होती है। डोका अवस्था में मीठे फलों वाले किस्मों की तुड़ाई उस अवस्था में करके ताजे फलों का विपणन कर दिया जाता है, तथा 'डोका' अवस्था में कसैले फलों वाली कुछ किस्मों को छुहारा बनाने के लिए तोड़ा जाता है।

उपज

खजूर में पूर्ण फल आने में लगभग 6 वर्ष का समय लग जाता है हालांकि कुछ फल चौथे साल से ही प्राप्त होने लग जाते हैं जो कि आयु में वृद्धि के साथ उपज भी बढ़ती जाती है। दस वर्ष की आयु के वृक्षों से लगभग 75-200 किलो फल प्रति पेड़ उपज हो सकती है जो कि फलों की किस्म व प्रबंधन पर निर्भर करती है। फसल उत्पादन का उचित प्रबंधन करके खजूर के बाग से 2 लाख रुपये तक प्रति हैक्टेयर प्रतिवर्ष शुद्ध लाभ अर्जित किया जा सकता है।

फसलोत्तर प्रबंधन

राजस्थान में जुलाई-अगस्त माह में वर्षा शुरू होने के कारण फलों की तुड़ाई अक्सर 'डोका' अवस्था में ही करनी पड़ती है। 'डोका' अवस्था में ही फलों को ताजे खाने के लिए अथवा छुहारा बनाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। छुहारा बनाने के लिए पूर्ण 'डोका' अवस्था प्राप्त फलों को पानी से धोने के बाद 5-10 मिनट तक गर्म पानी के उबालकर 40-50° से. तापक्रम पर वायु संचारित भट्टी (ओवन) में 70-90 घंटों के लिए सुखाते हैं। इन्हें सूरज की धूप में भी सूखा सकते हैं। पिण्ड खजूर बनाने के लिए पूर्ण 'डोका' अवस्था अथवा 'डांग' अवस्था के फलों को 20-30 सैकण्ड के लिए उबलते पानी में डुबाकर बाहर निकालकर 38-40° से. तापक्रम पर वायु संचारित भट्टी (ओवन) में रखते हैं। पके हुए फलों को टोकरियों में 5.5-7.2 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर तथा 85-90 प्रतिशत सापेक्षित आर्द्रता में शीत गृह में 2 सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है।



मैं मानता हूँ कि भारत की आधुनिक भाषाओं में हिन्दी ही सच्चे अर्थ में सदैव भारतीय भाषा रही है, क्योंकि वह निरन्तर भारत की एक समग्र चेतना को वाणी देने का चेतन प्रयास करती रही है और सभी भाषाओं में प्रदेश बोला है - कई बार बड़े प्रभावशाली ढंग से बोला है, हिंदी में आरम्भ से ही देश बोलता रहा है-भले ही कभी-कभी कमजोर स्वर में भी बोला है।

— सच्चिदानंद वात्स्यायन

पश्चिमी राजस्थान में अकालों का तुलनात्मक विवेचन

ए.एस. राव, सुरेन्द्र पूनियाँ एवं आर.एस. पुरोहित
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342 003

साधारण स्तर से कम वर्षा अकाल को जन्म देती है परन्तु साल दर साल इसका आगमन प्राकृतिक वनस्पतियों को नष्ट करने के साथ सम्पूर्ण प्रकृति को झकझोर देता है परिणामस्वरूप भोजन और पानी की खोज में मानव और पशु सम्पदा का पलायन होने लगता है। हर पाँच साल में अकाल का दो बार आगमन जैसे शुष्क क्षेत्रों की परम्परा में शामिल हो कर प्रकृति का नियमित हिस्सा बन गया है, जिसने यहाँ की उत्पादकता को प्रभावित करने के साथ मरुस्थलीकरण को बढ़ावा दिया है। पिछले दशकों की तुलना में 2000-2009 के दशक में भारतीय शुष्क क्षेत्र में अकाल की पुनरावृत्ति में वृद्धि देखी गयी है।

राजस्थान या भारतवर्ष ही नहीं, विश्व के विभिन्न देशों ने इस महादानव का सामना किया है अन्तर इतना है कि उसकी आवृत्ति और क्षमता में विभेद हो सकता है। दुनिया का हर महाद्वीप चाहे वह अमेरिका हो, अफ्रीका हो, एशिया हो, यूरोप हो या आस्ट्रेलिया सभी अकाल के दंश को झेल चुके हैं। अकाल ने कनाडा में 130 वर्षों का, अमेरिका के कोलोराडो में 70 वर्षों का, इटली में 80 वर्षों का रिकार्ड तोड़ दिया है परिणामस्वरूप हर देश इससे लड़ने के प्रबंध में जुटा हुआ है।

एक अध्ययन के अनुसार हमारे देश के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 120 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र अकाल के लिये संवेदनशील है। भारतीय प्रायद्वीप में अकाल का मुख्य कारण दक्षिण-पश्चिम मानसून की वर्षा का असफल होना है। वैश्विक परिसंचरण और अकाल के बीच एक अध्ययन से विदित हुआ कि दक्षिणी दोलन (ओसिलेशन) की अंल-नीनों अवस्था का भारत पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह ग्रीष्मकालीन अकाल का कारण बनने के साथ सर्दियों में वर्षा का कारण भी बनता है। इन सबका मूलभूत कारण जलवायु में परिवर्तन है जो कि संपूर्ण पृथ्वी को जल, थल एवं वायु तीनों मार्गों से प्रभावित कर रहा है। बाढ़ एवं सूखे को मौसम में बदलाव के एक प्रमुख प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। तापमान वृद्धि एवं वाष्पीकरण की दर तीव्र होने के परिणाम स्वरूप सूखा ग्रस्त क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। गौरतलब है कि विश्व मौसम संगठन की आइ.पी.सी.सी. ने वैश्विक स्तर पर वर्ष 2025 तक 0.4 से 1.1° से. तापमान, वर्ष 2050 तक 0.8 से 2.6° से. तापमान तथा 21 वीं सदी तक 1.4 से 5.8° से. तापमान में बढ़ोत्तरी की आशंका व्यक्त की है। भारतीय प्रायद्वीप में वर्ष 2020 तक 1.0 से 1.41° से. तापमान,

वर्ष 2050 तक 2.23 से 2.87° से. तापमान तथा 2080 तक 3.53 से 5.55° से. तापमान में बढ़ोत्तरी की आशंका व्यक्त की हैं (स्रोत: लाल, आदि, 2001)। जो कि अकाल के पैर पसारने का एक स्पष्ट निर्देश साबित हो सकता है।

अकाल के प्रकार

अकाल को उद्देश्य के आधार पर मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया गया है।

- **कृषिगत अकाल:** फसल लेने के मौसम में जब मृदा की नमी और वर्षा अपर्याप्त होती है तथा अनाज और चारे का उत्पादन गिर जाता है। इस अकाल को कृषिगत अकाल कहते हैं।
- **मौसमीय अकाल:** यह उस अवस्था का नाम है जब वर्षा में सामान्य स्तर से 25 प्रतिशत से ज्यादा गिरावट हो।
- **जलगत अकाल:** मौसमीय अकाल की लम्बी अवधि को जलगत अकाल कहते हैं। इस अवस्था में भूमि पर स्थित जल भण्डार जैसे नदियाँ, झील, तालाब आदि सूखने लगते हैं साथ ही भूमिगत जल के स्तर में भी गिरावट आती है।

इस वर्गीकरण के अन्तर्गत यदि अकाल किसी क्षेत्र में वर्ष के 20 प्रतिशत समय तक रहता है उसे अकाल संवेदनशील तथा यदि यह अवधि 40 प्रतिशत या अधिक है तो इसको अति संवेदनशील अकाल क्षेत्र के रूप वर्गीकृत किया जाता है।

शुष्क राजस्थान में अकाल का इतिहास

राजस्थान में अकाल एवं उसके प्रकार में कोई निश्चित पैटर्न नहीं दिखायी पड़ता है। वर्ष 1350 तथा 1750 के मध्य पश्चिमी राजस्थान में वर्ष 1362-63, 1648-49, 1659-60 तथा 1747-48 के दौरान मुख्य अकाल देखे गये हैं। भारतीय शुष्क क्षेत्र ने 15 भयंकर अकालों का सामना किया (सारणी 1)।

सारणी 1: वर्षानुसार शुष्क राजस्थान में विभिन्न प्रकार के अकाल

वर्ष	अकाल के प्रकार		
1792	कृषिगत	जलगत	मौसमीय
1804	कृषिगत	—	मौसमीय
1812-13	कृषिगत	जलगत	मौसमीय
1833-34	कृषिगत	जलगत	मौसमीय
1838-39	कृषिगत	—	मौसमीय

वर्ष	अकाल के प्रकार		
	कृषिगत	जलगत	मौसमीय
1848-49	कृषिगत	जलगत	मौसमीय
1850-51	कृषिगत	-	मौसमीय
1853-54	कृषिगत	-	मौसमीय
1868	कृषिगत	जलगत	मौसमीय
1869	कृषिगत	-	मौसमीय
1877	कृषिगत	जलगत	मौसमीय
1891-92	कृषिगत	जलगत	मौसमीय
1895-96	कृषिगत	जलगत	मौसमीय
1898-99	कृषिगत	जलगत	मौसमीय
1899-1900	कृषिगत	जलगत	मौसमीय

(स्रोत: नारायण, आदि, 2000)

वर्ष 1901 के बाद उन्नत उपकरणों एवं डोक्युमेंटेशन से विभिन्न तीव्रताओं वाले अकालों को काजरी द्वारा रिकार्ड किया गया जिसका संक्षिप्त विवरण तालिका 2 में दिया गया है। इसके अनुसार वर्ष 1987 और 2002 अकाल के मामले में सबसे भयानक वर्ष माने गये जबकि 19 वें दशक का सबसे भयंकर अकाल वर्ष 1918 को माना गया है। वर्ष 1903-05, 1957-60, 1966-71, 1984-87, 1998-2000 और 2002-2004 के दौरान तीन से छः वर्षों में विभिन्न तीव्रताओं के अकाल इस क्षेत्र में प्रायः देखे गये हैं। परिणामस्वरूप फसल, चारा उत्पादन, भूमिगत जल और पीने योग्य जल की उपलब्धता बुरी तरह प्रभावित हुई।

शुष्क क्षेत्रों में कृषिगत एवं मौसमीय अकाल की आवृत्ति अन्य क्षेत्रों की तुलना में बहुत अधिक है। पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्र (जिसमें 12 जिले शामिल हैं) में वर्ष 1901-2009 के दौरान साल के 50 से 62 प्रतिशत समय में अकाल की अनुभूति की गयी। कभी-कभी लगातार वर्षों में इसकी पुनरावृत्ति ने पशुपालन को कई तरीके से प्रभावित किया। राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में यह एक प्रसिद्ध कहावत है कि सौ साल की अवधि में एक वर्ष प्रचुर मात्रा में पैदावार (शत-प्रतिशत), पाँच वर्ष में औसत उत्पादन (60-75 प्रतिशत), तीन वर्ष में कम पैदावार (40-60 प्रतिशत) तथा एक वर्ष अकाल का होता है। इस क्षेत्र में वर्षा की अनियमितता एवं अनिश्चितता के साथ अकाल एवं सूखा इस क्षेत्र की तकदीर में शामिल हो चुके हैं। गौरतलब है कि वर्ष 1917 में जोधपुर जिले में 1176 मि.मी. वर्षा दर्ज की गयी।

निःसंदेह भोजन, चारा और जल संसाधनों में कमी के द्वारा अकाल, मनुष्य एवं पशुधन को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों तरीकों से प्रभावित करता है। अकाल के कारण विशेषकर शुष्क क्षेत्रों में फसलों की बुवाई अनिश्चित हो जाती है परिणामतः लोगों को रोजगार भी नहीं मिल पाता है। जिसके कारण लोग रोजी-रोटी की खोज में पड़ोसी राज्यों की तरफ पलायन करने लगते हैं परंतु अकाल के समय यह स्थिति विकराल रूप धारण कर लेती है। यद्यपि सरकार द्वारा अकाल राहत कार्यों में लोगों को अस्थायी रोजगार प्रदान किया जाता है लेकिन यह पर्याप्त नहीं होता, इसलिये घर की महिलायें राहत कार्य रोजगार पर जाती हैं और पुरुष राज्य से बाहर रोजगार तलाशते हैं। जिससे बच्चों का पालन-पोषण एवं शिक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है

सारणी 2: पश्चिमी राजस्थान में विभिन्न तीव्रताओं वाले अकाल की आवृत्ति

जिला	अवधि	निम्न	मध्यम	तीव्र	योग
बाड़मेर	1901-2009	22	19	22	63 (59)
बीकानेर	1901-2009	22	24	11	57 (53)
चुरू	1906-2009	34	20	05	59 (58)
गंगानगर	1926-2009	20	13	15	48 (59)
हनुमानगढ़	1906-2009	17	16	18	51 (50)
जैसलमेर	1901-2009	15	25	22	62 (58)
जालोर	1901-2009	30	19	15	64 (60)
झुंझुनु	1901-2009	28	21	08	57 (53)
जोधपुर	1901-2009	24	25	15	64 (60)
नागौर	1901-2009	29	24	13	66 (62)
पाली	1901-2009	18	31	11	60 (56)
सीकर	1901-2009	23	19	15	57 (53)
पश्चिमी राजस्थान	1901-2009	24	21	14	59 (57)

कोष्ठक में दिये गये अंक कुल अकाल वर्ष का प्रतिशत है।

वर्ष 1901 से 2009 के बीच पश्चिमी राजस्थान ने मध्यम एवं तीव्र क्षमताओं वाले 59 अकाल देखे हैं और इनमें से 5 ऐसे भी अवसर आये जब लगातार अकाल पड़े। वर्ष 1903-05, 1957-60, 1966-71, 1984-87 और 1998-2000 राजस्थान के लिये भीषणतम अकाल वर्ष रहे हैं। इसी तरह वर्ष 1918, 1987 और 2002 के अकाल बहुत ही

विकराल थे जब वर्षा सामान्य से क्रमशः -81, -65 और -70 प्रतिशत कम हुई । जुलाई का महीना जहाँ सबसे गीला महीना माना जाता है, वर्ष 2002 में यह सबसे सूखा महीना साबित हुआ परिणामस्वरूप सम्पूर्ण देश को लगभग 24 मिलियन टन अनाज का नुकसान भुगतान पड़ा ।

पश्चिमी राजस्थान के नागौर, जालोर, जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर और गंगानगर जिलों में अकाल की प्रबल संभावनाएँ बनी रहती है। यहाँ तक कि इन जिलों के कुछ हिस्सों में अच्छी वर्षा वाले साल में भी अकाल पड़ जाता है।

यदि ऐसा कहे कि शुष्क क्षेत्र अकाल का स्थायी निवास स्थल है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसलिये इन क्षेत्रों में इसका प्रबंधन एक रणनीति द्वारा ही संभव है। यद्यपि अकाल अथवा मानसून के लम्बी अवधि के पूर्वानुमान हमेशा अनिश्चितता भरे होते हैं, फिर भी भारत मौसम विभाग के उच्चस्तर के पूर्वानुमान तंत्र, राष्ट्रीय मध्यम अवधि मौसम पूर्वानुमान केन्द्र एवं कृषि सलहाकार सर्विसेज के टर्म फोरकास्ट, काजरी द्वारा विकसित अकाल तकनीक और अन्य अनुसंधान संस्थानों के पर्याप्त संसाधन और सूचना तकनीक पूर्व की अपेक्षा अब अकाल से निपटने में अधिक सक्षम है। भारत मौसम विभाग द्वारा साप्ताहिक आधार पर की जाने वाली भविष्यवाणी अकाल की स्थिति को मोनीटर करने में अहम भूमिका निभा रही है।

लम्बी अवधि के महासागरीय एवं मौसमीय आकड़ों का एकत्रीकरण तथा मानसून और अकाल के पूर्वानुमान मॉडल के विकास के लिये उनका विश्लेषण एवं रिमोट सेन्सिंग आकड़ों को मौसमीय आकड़ों के साथ समायोजित करके अकाल के पूर्वानुमान/मोनीटरिंग को और अच्छी तरह से सुधारा जा सकता है।



मृदा की घटती उर्वरता के कारण एवं प्रबंधन

सोमा श्रीवास्तव

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342 003

कृषि भूमि का स्वस्थ स्वरूप कृषि के आधुनिकीकरण के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। वर्तमान में बढ़ता हुआ शहरीकरण कृषि योग्य भूमि का हास, अधिक आय के लालच में एकल फसल चक्र का उपयोग, अधिक एवं असंतुलित मात्रा में कृषि रसायनों जैसे कीटनाशी, खरपतवार नाशी एवं रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध प्रयोग, एक ही खेत में फसल योजना को अपनाये बिना अधिक फसल भार डालना आदि मृदा की घटती उर्वरा शक्ति के प्रमुख कारण हैं। मृदा में प्राकृतिक रूप से बहुत से पौषक तत्व पाये जाते हैं व इनका संतुलन मृदा की उच्च उर्वरा शक्ति के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिये अथवा उच्चीकरण करने के लिये इन पौषक तत्वों को कृत्रिम रूप से समावेशित किया जाता है परन्तु जब इन्हीं पौषक तत्वों का असंतुलित मात्रा में प्रयोग किया जाता है तो ये मृदा में प्राकृतिक रूप से संतुलन की क्षमता का हास कर देते हैं। इसके अतिरिक्त जब मिट्टी में कुछ अनुपयोगी या विकृतीकारक तत्व मिल जाते हैं तो भी मिट्टी की उत्पादकता घट जाती है।

इस प्रकार की विकृति को मृदा प्रदूषण कहते हैं। मृदा प्रदूषण से तात्पर्य यह है कि जब किन्हीं भौतिक या मानवीय कारणों जैसे अधिक फसल भार के कारण पौषक तत्वों की कमी, अंधाधुंध कृषि रसायनों का प्रयोग, व औद्योगिक अपशिष्ट के कारण मृदा की उर्वरता घटना, प्रदूषित जल का प्रयोग, जीवांश पदार्थों का असंतुलित अनुपात, इत्यादि के कारण मृदा की उत्पादकता पर पड़ने वाला प्रतिकूल प्रभाव मृदा प्रदूषण की श्रेणी में आता है। मृदा में उपस्थित मौलिक तत्वों की कमी न केवल सामयिक प्रभाव डालती है बल्कि इसके दीर्घगामी परिणाम भी हैं। मृदा में मौलिक पौषक तत्वों की लगातार कमी मृदा की घटती उर्वरा क्षमता व बांझपन के लिए उत्तरदायी है व मृदा का अत्याधिक दोहन इसके तत्वहीन होने का प्रमुख कारण है।

मृदा प्रदूषण के मुख्य कारक

कृषि रसायनों का अन्धाधुन्ध व असंतुलित प्रयोग: भारतीय कृषि में विभिन्न कृषि रसायनों का प्रयोग लगातार बढ़ता ही जा रहा है व पिछले पचास वर्षों में कृषि रसायनों के प्रयोग में लगभग 4 गुणा वृद्धि देखी गयी है। ये रासायनिक कीटनाशी तुरन्त प्रभाव दिखला कर कीटों को नष्ट तो कर देते हैं परन्तु फसलों पर इनके

दीर्घगामी दुष्परिणाम देखे जा रहे हैं। ये कीटनाशी फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों के साथ-साथ मृदा में प्राकृतिक रूप से उपस्थित लाभदायक सूक्ष्मजीवों को भी नष्ट कर देते हैं व इसके अतिरिक्त ये मृदा का तापमान बढ़ाकर उसके पौषक तत्वों से रासायनिक अभिक्रिया कर मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरा क्षमता को घटा देते हैं। कृषि कार्य हेतु उपयोग में आने वाले विभिन्न रासायनिक कीटनाशियों की भूमि में स्थिरता भी देखी गयी है। इनमें कुछ कई वर्षों तक व कुछ कई महीनों तक मृदा में उपस्थित रहते हैं व इनके अवशेष फसलों में पहुँचकर खाद्य चक्र में सम्मिलित हो जाते हैं। विभिन्न कृषि रसायनों की भूमि में स्थिरता निम्न प्रकार देखी गयी है।

- डी.डी.टी., फ्लोरोडेन, डाइएलड्रिन : 1-5 वर्ष
- एट्राजिन, सिमेजिन : 1-2 वर्ष
- कार्बारिल : 1-2 हफ्ते
- 2-4 डी : 1-5 सप्ताह

रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग: आंकड़ों के अनुसार रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग में भारत का तीसरा स्थान है वर्तमान में हमारे देश में रासायनिक उर्वरकों की खपत 184 मिलियन टन प्रति वर्ष है। रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग मृदा की उर्वरता को बढ़ाने के बजाय प्रतिकूल प्रभाव डालता है। वर्तमान में देखा गया है कि कृषक इन उर्वरकों का युक्ति संगत व आनुपातिक प्रयोग न करके मनमाने ढंग से प्रयोग कर रहे हैं व कुछ उर्वरकों की खपत सामान्य से अधिक व कुछ की न्यूनतम स्तर पर है। कृषि उर्वरकों का युक्तिसंगत व वैज्ञानिक ढंग से मृदा की गुणवत्ता के स्तर के अनुसार प्रयोग ही वांछित लाभ की प्राप्ति करा सकता है जैसा कि किसी औषधि के आवश्यकता व मात्रा के अनुसार प्रयोग ही समस्या का समाधान करता है परन्तु इन पौषक तत्वों का अवैज्ञानिक व मनमाने ढंग से प्रयोग वांछित लाभों की प्राप्ति नहीं कर पाता है। विभिन्न अम्लीय व क्षारीय उर्वरकों के भारी मात्रा में प्रयोग से मृदा को भुरभुरा व हवादार बनाने वाले व उर्वरा शक्ति प्रदान करने वाले जीव नष्ट हो जाते हैं व इनका प्राकृतिक संतुलन बुरी तरह से प्रभावित होता है। इस प्रकार के रसायनों का समुचित ढंग से व सही समय पर प्रयोग न करने से ये रसायन सही ढंग से अवशोषित नहीं हो पाते जिससे एक तरफ तो वांछित समस्या का समाधान नहीं हो पाता वहीं दूसरी तरफ शेष रसायनों के अवशेष भूमि के अन्दर पड़े रहने के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। नत्रजन युक्त उर्वरकों के अधिक उपयोग से वातावरण में नत्रजयुक्त गैसों जैसे नाइट्रिक आक्साइड, नाइट्रस आक्साइड व नाइट्रोजन डाइ आक्साइड का स्तर बढ़ जाता है। इन गैसों के उत्सर्जन से भूमि का तापमान बढ़ जाता है व कई

प्रकार की व्याधियां पैदा करता है व इसके साथ ही भूमिगत जल में नाइट्रेट की सान्द्रता बढ़ जाती है। जिसके कारण बच्चों में ब्लू बेबी व व्यस्कों में कैंसर जैसी बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है।

सिंचाई के लिये प्रदूषित जल का उपयोग: वर्तमान समय में भूमिगत जल के अत्यधिक दोहन के कारण भूमि के नीचे मौजूद क्लोराइड व आर्सेनिक जैसे तत्व जल में घुलकर बाहर आ जाते हैं व मृदा में मिलकर खाद्य श्रृंखला में पहुँच जाते हैं। विभिन्न प्रकार के औद्योगिक अपशिष्ट भी जल में घुलकर विषाक्तता उत्पन्न करते हैं। नत्रजनधारी उर्वरकों का भारी मात्रा में प्रयोग करने के कारण वातावरण में अमोनिया गैस का उत्सर्जन होता है जो कि अम्ल वर्षा का घटक होता है। अम्ल वर्षा के कारण खनिजों विशेषकर एलुमिनियम की घुलनशीलता बढ़ जाती है जो जल की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त म्यूनिसिपल जल का सिंचाई के लिये प्रयोग भी बहुत हद तक मृदा की घटती उर्वरा शक्ति के लिये उत्तरदायी है। इस जल में भारी तत्वों जैसे क्रोमियम, कैडमियम, निकिल, लेड आदि की भारी मात्रा पायी जा रही है जो फसलों के लिये अत्यधिक घातक है।

कच्ची कम्पोस्ट का प्रयोग: कच्ची कम्पोस्ट के प्रयोग के कारण खेतों में दीमक व कुरमुला कीट का प्रकोप बहुत बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें पौषक तत्वों की मात्रा भी कम होती है। कच्ची कम्पोस्ट का प्रयोग मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के बजाय और क्षीण कर देता है क्योंकि इसमें उपस्थित पौषक तत्वों का अधिकांश भाग या तो गैस के रूप में वातावरण में चला जाता है या वर्षा जल के साथ बह जाता है व मृदा में पर्याप्त रूप से अवशोषित नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त यह हानिकारक कीटों को भी निमंत्रण देता है।

मृदा की उर्वरता को बढ़ाने के उपाय: मृदा की उर्वरा क्षमता कृषि उत्पादन के लिये बहुत महत्वपूर्ण है वर्तमान में मिट्टी की घटती उपज क्षमता कृषि क्षेत्र के लिये चिन्ता का विषय है।

अतः मृदा को प्रदूषित होने से रोकने के लिये व पैदावार बढ़ाने के लिये निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखना अतिआवश्यक है -

- भूमि की समय-समय पर मृदा स्वास्थ्य जाँच कराते रहें।
- अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद का ही प्रयोग करें।
- कच्ची कम्पोस्ट के प्रयोग से बचें।
- खेतों में अधिक समय तक गोबर के ढेर न रखें।
- पौषक तत्व प्रबंधन के द्वारा खेतों में पौषक तत्वों की समुचित मात्रा बनाये रखें।

- रासायनिक उर्वरकों व अन्य रसायनों का समुचित मात्रा में ही व सही समय समय पर प्रयोग करें।
- कृषि रासायनिक के अत्याधिक प्रयोग से बचे व जैविक खाद तथा कीटनाशी के प्रयोग को अपनायें।
- फसल चक्र मृदा उर्वरता को बढ़ाने के लिये दलहनी फसलों व हरी खाद वाली फसलों को अपनायें।
- वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग करें यह मृदा के लिये अत्यन्त लाभदायक है।

उपरोक्त साधनों को ध्यान रखकर मिट्टी की घटती उर्वरा शक्ति को निश्चित रूप से बढ़ाया जा सकता है व राष्ट्र के खाद्य उत्पादन में सकारात्मक योगदान देकर खाद्य सुरक्षा को अवश्य प्राप्त किया जा सकता है।



हिन्दी ही हमारे राष्ट्रीय एकीकरण का सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है। यह किसी प्रदेश या देश की भाषा नहीं, बल्कि समस्त भारत की 'भारती' के रूप में ग्रहण की जानी चाहिए।

— कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी

कृषि में सूक्ष्मजीवी कीटनाशियों का उपयोग

राकेश पाठक, एस.के. सिंह एवं अंजली पंचोली

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342 003

सम्पूर्ण विश्व में 329 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल के साथ भारत सातवाँ सबसे बड़ा देश है। इसका लगभग 57 प्रतिशत क्षेत्रफल कृषि कार्य में प्रयुक्त है, जो कि देश की आर्थिक परिदृश्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या के लिये 2025 तक लगभग 270 मिलियन टन खाद्यान्न की आवश्यकता पड़ेगी। कीट एवं बीमारियों के कारण फसल उत्पादन में लगभग 30 प्रतिशत तक की गिरावट देखी गयी है। वर्तमान में अंधाधुन्ध कीटनाशकों के प्रयोग ने बहुत सी फसलों के उत्पादन एवं उत्पादकता को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। खाद्यान्न का अधिक उत्पादन एवं पर्यावरण सुरक्षा वर्तमान समय की अहम आवश्यकता है।

फसलोत्पादन में संश्लेषित रसायनिक कीटनाशियों की अहम भूमिका रहती है, किन्तु इनके हानिकारक प्रभावों के कारण इन पर हमेशा प्रश्नवाचक चिह्न लगा रहता है। कीटनाशियों के बहुतायत उपयोग से हवा, पानी एवं मिट्टी के प्रदूषण के साथ कीटनाशी अवशेष, लाभकारी कीटों को नुकसान एवं उनकी प्रतिरोधकता गंभीर समस्याओं को जन्म दे रही है। कीट प्रबंधन के अन्य विकल्पी तरीकों से कीट नियंत्रण तो होता ही है, इसका हानिकारक प्रभाव भी अपेक्षाकृत कम होता है। इन विकल्पी विधियों में एक है सूक्ष्मजीवी कीटनाशियों का उपयोग। सूक्ष्मजीवी कीटनाशी ऐसे कीटनाशी होते हैं जिसमें सूक्ष्मजीवी अथवा उनके सह उत्पाद प्रयोग में लिये जाते हैं। अलक्षित कीटों एवं मनुष्यों के प्रति असंवेदी होने के कारण सूक्ष्मजीवी कीटनाशी बहुत उपयोगी होते हैं साथ ही उपयोगकर्ता एवं उपभोक्ता दोनों के लिये सुरक्षित भी हैं।

जैव कीटनाशियों के अन्तर्गत कवक, बैक्टीरिया, वाइरस, प्रोटोजोआ और निमेटोड के द्वारा कृषि तंत्र में कीट, बीमारियों, खरपतवारों पर जैविक नियंत्रण किया जाता है। फसलों में हानिकारक कीटों के नियंत्रण के लिये विभिन्न बैक्टीरिया जैसे *बेसीलस थुरेन्जिंसिस*, *बेसीलस पोलिली*, *बेसीलस लेन्टीमार्बस*, *बेसीलस स्फेरीकस* आदि का प्रयोग जैविक कीटनाशी के रूप में किया जाता है, इनमें से *बेसीलस थुरेन्जिंसिस* सबसे अधिक उपयोग में लिया जाने वाला कीटनाशी है।

सूक्ष्मजीवी कीटनाशियों के फायदे

सूक्ष्मजीवी कीटनाशी वन्यजीवों, मनुष्यों एवं अन्य जीवों के लिये जहरीले नहीं होते हैं। अलक्षित कीटों, अन्य जीवों एवं मनुष्यों के प्रति उदासीनता सूक्ष्मजीवी कीटनाशियों की सबसे बड़ी विशेषता है। इनकी जहरीली प्रक्रिया कीटों के किसी एक समूह अथवा प्रजाति विशेष पर ही सम्भव है इसलिये ये लाभदायक कीटों को नुकसान नहीं पहुँचाते हैं। चूँकि इनका अवशेष मनुष्य एवं अन्य जीवों के लिये हानिकारक नहीं है, इसलिये सूक्ष्मजीवी कीटनाशियों का प्रयोग फसल की कटाई के समय भी किया जा सकता है। सूक्ष्मजीवी कीटनाशियों के स्प्रे की संख्या बहुत कम होती है परिणामस्वरूप कीटनाशी की मात्रा, पानी एवं मजदूरी की अल्प आवश्यकता के द्वारा आर्थिक बचत होती है, साथ ही वायु प्रदूषण भी कम होता है तथा किसानों के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है।

सूक्ष्मजीवी कीटनाशियों की सीमायें

चूँकि सूक्ष्मजीवी कीटनाशी किसी एक कीट के समूह अथवा प्रजाति के लिये विशेषीकृत हैं इसलिये इसका अनुप्रयोग खेत एवं बगीचे में उपस्थित उसी कीट प्रजाति के कीड़ों का खात्मा करता है। यदि उस क्षेत्र में अन्य कीट हैं तो वे इससे प्रभावित नहीं होंगे। वैसे इसी तरह की क्रिया पारम्परिक कीटनाशियों के साथ भी देखी जाती है क्योंकि सभी प्रकार के कीटों के नियंत्रण के लिये कोई एक कीटनाशी नहीं बना है। ऊष्मा अथवा पराबैंगनी विकिरण, सूक्ष्मजीवी कीटनाशियों की प्रभाविता को कम कर देता है। कुछ सूक्ष्मजीवी कीटनाशियों के संग्रहण एवं निर्माण के लिये विशेष विधियों की आवश्यकता होती है। जैविक कीटनाशियों की बेमेल गुणवत्ता एवं उसका वितरण, तकनीकी जानकारियाँ, प्रशिक्षित व्यक्तियों, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय अनुसंधान में कमी के अलावा विभिन्न विशेषीकृत कीट को पहचान कर उसके प्रति, बीटी की प्रभाविता का अध्ययन इस कीटनाशी के उपयोग एवं विकास को सफल बनाने में कठिनाईयें उत्पन्न कर रहा है।

प्रस्तुत आलेख जैविक कीटनाशी के रूप में *बेसीलस थुरेन्जिंसिस* (बीटी) नामक बैक्टीरिया की पड़ताल कर रहा है।

बेसीलस थुरेन्जिंसिस (बीटी) मृदा में पाया जाने वाला एक छड़ी की आकृति वाला ग्राम पाजीटिव बैक्टीरिया है। विभिन्न फसलों में कैटरपिलर के प्रबंधन में इस बैक्टीरिया की अहम भूमिका को विगत कई वर्षों से सम्पादित दिया जा रहा है। वर्तमान में सौ से अधिक बीटी उत्पादों को, महत्वपूर्ण कीटों के प्रबंधन के लिये पंजीकृत करवाया जा चुका है। इसकी प्रभाविता का प्रमाण यही है कि कीटनाशियों के वैश्विक बाजार में सूक्ष्मजीवियों द्वारा निर्मित कीटनाशियों का हिस्सा केवल 1 से 2 प्रतिशत है जब कि बीटी सूक्ष्मजीवी पेस्टीसाइड बाजार का 95 प्रतिशत हिस्से पर अपनी भागीदारी दर्ज कर रहा है। विश्व स्तर पर प्रति वर्ष बीटी का उत्पादन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा कई

हजार टन की मात्रा में किया जा रहा है। पिछले तीन दशकों में सूक्ष्मजीवी कीटनाशियों के प्रति लोगों की रुचि बढ़ी है, परिणामस्वरूप बीटी के वृहद् स्तर पर उत्पादन के लिये प्रोटोकॉल विकसित किये जा रहे हैं और इन्हें विभिन्न व्यवसायिक नामों से पंजीकृत भी किया जा रहा है।

इस सूक्ष्मजीवी का उत्पादन किण्वन विधि द्वारा किया जाता है। किण्वन की विभिन्न विधियों में से डीप टैंक किण्वन विधि, बीटी उत्पादन की प्रमुख विधि है, इस विधि में तरल तंत्र में इसका उत्पादन किया जाता है। बीटी की वृद्धि के लिये ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है समस्त पंजीकृत सूक्ष्मजीवी कीटनाशियों में बीटी सबसे उपयोगी एवं सफल सूक्ष्मजीवी कीटनाशी है।

अनुसंधानों से ऐसा स्पष्ट हुआ है कि 15 दिनों के अन्तराल पर दो स्प्रे करने से कीटों के प्रकोप को रोका जा सकता है। बीटी द्वारा कीट प्रबंधन का खर्चा रसायनिक कीटनाशियों की तुलना में तीन गुना कम आता है।

बीटी कैसे काम करता है

इस बैक्टीरिया में बीजाणु निर्माण के समय कीटनाशी प्रोटीन पाया जाता है जो बहुत से *लेपिडोप्टेरस* और *कॉलियोप्टेरस* नामक हानिकारक कीटों के प्रभावी नियंत्रण में उपयोगी है। बीटी का जहररूपी कीटनाशी प्रोटीन, कीट के आँत में घुलकर सक्रिय हो जाता है, यह जहर, कीट की आँत की कोशिकाओं पर आक्रमण करके उसमें छेद कर देता है। बीटी के स्पोर्स आँत से बाहर निकलकर अंकुरित हो जाते हैं और कीट की मृत्यु हो जाती है। बीटी की प्रक्रिया बहुत विशेषीकृत होती है। बीटी की विभिन्न प्रजातियाँ कीट की आँत की दीवार के विभिन्न ग्राहियों के लिये विशेष होते हैं और इसकी विषाक्तता इन्हीं ग्राहियों पर निर्भर करती है। प्रत्येक कीट प्रजाति में अलग-अलग तरह के ग्राही होते हैं, जो कि कुछ प्रोटीन टोक्सिन से ही जुड़ते हैं। यह उसी तरह है जैसे कि हर ताले की एक निश्चित चाबी होती है। इसलिये कीट नियंत्रण में लक्ष्य कीट प्रजाति के नियंत्रण के लिये निर्धारित बीटी का चयन आवश्यक है, परिणामस्वरूप उपयोगी कीट इस विष से बच जाते हैं।

जैविक कीटनाशी, कीटों के प्रत्यक्ष प्रबंधन में पूर्णरूपेण पर्यावरण मित्र की महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं साथ ही विभिन्न रसायनिक स्प्रे की संख्या में गिरावट आती है। आर-डीएनए तकनीक के द्वारा इच्छित लक्षणों युक्त तथा हानिकारक कीटों पर प्रभावी बीटी का विकास किया जा सकता है। बीटी के विभिन्न प्रजातियों से कीटनाशी क्रिस्टल प्रोटीन (आई.सी.पी.) जीन का पता लगाकर इन्हें ट्रान्सजीनी फसलों में डाला गया है। विभिन्न फसलों जैसे टमाटर, कपास, आलू, तम्बाकू, बैंगन आदि में इसकी कीट प्रतिरोधकता को प्रदर्शित किया जा चुका है।

संक्रमण के लक्षण

बीटी से संक्रमित होने के बाद कैटरपिलर निष्क्रिय होकर खाना बन्द कर देता है और एक या दो दिनों में मर जाता है, उसका शरीर भूरा अथवा काला हो जाता है।

व्यापारिक नाम

बीटी विभिन्न व्यापारिक नामों जैसे डाइपेल, जवेलिन, वार्म अटैक, कैटरपिलर किलर, बैक्टोस्पीन, एसओके-बीटी आदि नामों से बाजार में उपलब्ध है। कुछ छोटी कंपनियाँ भी विभिन्न नामों से इसको बेच रही हैं। ये उत्पाद द्रव, पाउडर, डस्ट और ग्रेन्युल के रूप में उपलब्ध हैं।

उपयोग सम्बन्धी निर्देश

पत्तियों को पूरी तरह कवर करते हुये स्प्रे करना चाहिये जिससे यह कीट द्वारा खाया जा सके। कैटरपिलर जब छोटे हों तभी बीटी का स्प्रे करना चाहिये। शाम के समय अथवा बादल युक्त दिनों में स्प्रे करना उपयुक्त रहता है। यदि स्प्रे के बाद बारिश आ जाती है तो कीटनाशी का दुबारा छिड़काव जरूरी है। बीटी का प्रभाव कई दिनों तक नहीं रहता इसलिये आवश्यकता होने पर इसका छिड़काव दुबारा करना आवश्यक है। इन सबके अलावा उत्पाद पर लिखे निर्देशों का पालन जरूरी है।



सम्मान तिरंगे का करते, सम्मान राष्ट्र के गाने का
यदि मन में रखते ध्येय, देश को जग में उच्च बनाने का।
सम्मान तुम्हें करना होगा माँ के माथे की बिन्दी का,
सम्मान करो निज भाषा का, सम्मान करो तुम हिन्दी का।।

— डॉ. मुरारीलाल सारस्वत

गेहूँ की फसल को रोगों से कैसे बचायें

सतीश लोढ़ा एवं रीतू मावर

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342 003

रबी में ली जाने वाली फसलों में गेहूँ का अपना विशेष स्थान है, परन्तु कई बार बीमारियों के प्रकोप के कारण इस फसल का काफी नुकसान भी होता है। इन बीमारियों में तीन प्रकार की रोली, कण्डुआ, झुलसा व मोल्या बीमारी प्रमुख है। इन रोगों का उपचार समय रहते कर लेना चाहिये।

गेहूँ की पीली रोली जनवरी माह में पत्तियों पर देखी जा सकती है यह रोली पत्तियों पर पतली-पतली लम्बी धारियों के रूप में दिखाई दे सकती है जो धीरे-धीरे फैल कर तने, बालियों व अन्य हिस्सों पर भी देखी जा सकती है यहाँ तक की अगर बीजों को निकाला जाया तो उन पर भी इस रोली का प्रकोप देखा जा सकता है। अधिकतर यह रोली देशी किस्मों में ज्यादा आती है। इस रोली से उपज पर काफी बुरा असर पड़ता है।

गेहूँ की दूसरी रोली भूरे रंग की होती है जो भूरे रंग के धब्बों के रूप में सिर्फ पत्तियों पर देखी जा सकती है। यह रोली सामान्यतः सबसे पहले आती है। पत्तियों पर भूरे रंग के गोल या असमान धब्बों के रूप में इस रोग की शुरुआत होती है जो मौसम की अनूकूलता होने पर तेजी से फैलते है।

गेहूँ की तीसरी रोली काली होती है जो फरवरी के अन्त या मार्च के शुरु में जब मौसम गर्म होना शुरु होता है तब फैलती है यह सबसे खतरनाक रोग है जो बहुत कम समय में ही पत्तियों, तने व बालियों पर उभरे हुए धब्बों के रूप में दिखाई देता है यदि यह रोग दानो के पकने से पूर्व ही आ जाए तो फसल को 50 प्रतिशत से ज्यादा का नुकसान दे देता है, अतः बुवाई से पहले ही इस रोग के रोकथाम को ध्यान में रखना चाहिये।

गेहूँ की इन तीनों रोलियों की रोकथाम के लिये इस देश के विभिन्न कृषि अनुसंधान केन्द्रों पर पिछले 25 वर्षों में काफी कार्य हुआ है व कई प्रकार की उन्नत किस्मों का विकास हुआ है। ये किस्में रोग रोधक होती है। अतः किसान भाईयों को यह सलाह है कि वे अपने खेत में सिर्फ रोग रोधक किस्में ही लगायें। जिसका बीज राष्ट्रीय बीज निगम, प्रादेशिक बीज निगम अथवा अन्य मान्यता प्राप्त बीज कम्पनियों से ही खरीदे। गेहूँ की कई किस्मों का बीज आजकल उपलब्ध है जैसे राज-3077, जो पूरे राजस्थान में बोई जा सकती है यह काली रोली रोग के प्रति उच्च रोधक गुणों से युक्त

है साथ ही करनाल बंट रोधी भी है इसका एक अन्य फायदा यह भी है कि इसकी फसल आड़ी नहीं गिरती व दाने अपने आप नहीं गिरते। ऐसी ही एक दूसरी किस्म है राज-3765 जो सिंचित क्षेत्रों में बोने के लिये उपयुक्त है और सभी रोगों के प्रति उच्च रोग रोधी गुणों से युक्त है। देर से बोने वाली किस्मों में राज-3077 भी प्रमुख है यह काली, पीली रोली, कण्डुवा व झुलसा रोगों की प्रतिरोधी है। खेत में रोली का प्रकोप दिखाई देने पर 25 कि.ग्रा. गंधक चूर्ण का प्रति हैक्टेयर की दर से 15 दिन के अन्तर पर 2-3 बार भुरकाव करें अथवा 2 कि.ग्रा. मेन्कोजेब का प्रति हैक्टेयर की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें।

गेहूँ का कण्डुवा रोग शीतल जलवायु वाले स्थानों में अधिक लगता है इस रोग की पहचान गेहूँ के त्नों में बाल आने के समय ही हो पाती है रोग ग्रसित पौधों की बालियों में दाने नहीं बन पाते हैं वरना उनके स्थान पर फफूँद का काला चूर्ण बन जाता है जिस खेत से अगली बुवाई के लिये बीज लिया जाय वहाँ ऐसी बालियों को इकट्ठा करके जला देना चाहिये। इसके अलावा जिन खेतों में इस रोग का प्रकोप अधिक हो वहाँ के बीज को बोने के काम में नहीं लेना चाहिये। इस फसल को कण्डुआ रोग से बचाने का एक बहुत ही सरल उपाय है जिसमें बीजों को पहले चौड़े पैंदे वाले बर्तन में रखा जाता है। गर्मी के दिनों में बीजों को सुबह 8 से 12 बजे तक पानी में रखकर दोपहर में 12 बजे से 4 बजे तक पतली तह में फर्श पर सुखा देते हैं। जिससे कड़ी धूप में बीज सूख जाय व बीजों के अन्दर का रोग खत्म हो जाय बीजों का उपचार कवकनाशियों जैसे विटावेक्स या बेनलेट से 2 ग्राम प्रति किलो के हिसाब से करना भी काफी उपयोगी रहता है।

गेहूँ का झुलसा रोग भी कई स्थानों पर काफी उग्र अवस्था में देखा जा सकता है ज्यादातर यह काठा गेहूँ में होता है। यह रोग बुवाई के 7-8 सप्ताह बाद दिखाई देता है। पत्तियों पर छोटे-छोटे पीले व कथई धब्बों से इस रोग की शुरुआत होती है सबसे शुरु में निचली पत्तियों पर यह रोग देखा जा सकता है। उग्र अवस्था में बहुत सारे धब्बे मिलकर पत्ती को झुलसा देते हैं। इस रोग को रोकने के लिये बीजों को 52° से. पर दस मिनट रखकर उपचारित करना चाहिये। खेत में फॉसफोरस व पोटाश की मात्रा बढ़ाने से भी रोग कम किया जा सकता है। इसके अलावा मेन्कोजेब का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करना चाहिये। फसल में रोग लगने से पहले ही जनवरी के प्रथम सप्ताह से 15 दिन के अन्तर पर मेन्कोजेब 2 कि.ग्रा. या कॉपर आक्सीक्लोराईड 3 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से घोलकर छिड़काव करें।

गेहूँ का इयर कोकल रोग भी हमारे क्षेत्र में काफी देखा गया है। यह रोग सूत्र कृमि से होता है इसके लक्षण तने, पत्तियों एवं बालियों पर दिखाई देते हैं। तने एवं उठल के कुछ भागों पर तथा फूल के गुच्छे पर गोंद जैसा पदार्थ दिखाई देता है। रोग

ग्रसित बालियों के बाल बिखरे से दिखाई देते हैं व गेहूँ के स्थान पर इनमें छोटी-छोटी गाँटे बन जाती हैं। उग्र अवस्था में पौधे मुरझाकर गिर जाते हैं। रोग की रोकथाम के लिये स्वस्थ बीजों को चुनना चाहिये। इसके लिये बीजों को पानी में तैरा कर हल्के बीजों को अलग कर लेना चाहिये। रोग ग्रसित खेत में जौ व जई बोना चाहिये। फ्यूराडान नामक दवा खेत में मिलानी चाहिये।

गेहूँ का एक और रोग प्रमुख है वह है करनाल बन्ट, यह रोग भी बीजों के बनने के समय दिखाई देता है जिसमें बीजों का एक बड़ा भाग काले-काले रंग का हो जाता है ऐसे बीजों से उपज पर काफी असर पड़ता है। इस रोग को रोकने से उपज पर काफी असर पड़ता है। इस रोग को रोकने के लिये खेत में रोगरोधी किस्म, जैसे राज 1482, राज 1952 आदि लगानी चाहिये। ऐसा ही एक और रोग है फ्लेग स्मट जिसके रोकथाम के लिये बेनलेट नामक दवा से 2 ग्राम प्रति किलो के हिसाब से उपचारित करके बोना चाहिये। खेत में रोग रोधी किस्मों को लगाना चाहिये।

गेहूँ में पौधों की जड़ों में गाँटे बन जाती हैं तथा पौधे छोटे रहकर पीले पड़ जाते हैं इसे मोलया रोग कहते हैं। इसकी रोकथाम हेतु रोगग्रस्त खेत में 2 साल गेहूँ की फसल नहीं लेवें। इसके स्थान पर फसल चक्र में चना, सरसों, प्याज, मेथी व गाजर की फसले बोये। मई-जून माह में खेत की दो बार गहरी जुताई करें। जिन खेतों में रोग का प्रकोप अधिक हो वहाँ पर बुवाई के पूर्व 45 कि.ग्रा. कार्बोफ्यूरोल 3 प्रतिशत कण प्रति हैक्टेयर की दर से 90 कि.ग्रा. यूरिया के साथ भूमि में ऊर कर बुवाई करें। यदि बुवाई के पूर्व उपचार नहीं किया जा सके तो शीर्ष जड़ जमने के समय भी पहली सिंचाई के साथ कार्बोफ्यूरोल 3 प्रतिशत रसायन दिया जा सकता है।



विलुप्त प्रायः पादप प्रजाति सरगुड़ा का संरक्षण

चन्दन सिंह पुरोहित, रविकिरण कुल्लोली एवं सुरेश कुमार
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342 003

भारतीय मरुस्थल की रेतीली मिट्टी में अधिक घुलनशील लवणों की अधिक मात्रा, अधिक पी.एच. तथा कम कार्बनिक पदार्थ होते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। फॉस्फेट तथा नाइट्रोजन की पर्याप्त मात्रा से मृदा उपजाऊ रहती है। यहाँ लवणीय तथा क्षारीय क्षेत्र भी पाए जाते हैं।

गर्मियों में 34°-45° से.ग्रे. तक तापमान रहता है जो कभी-कभी 48° से.ग्रे. तक भी पहुँच जाता है। जनवरी माह में पारा 9°-17° से.ग्रे. के बीच चढ़ता-उतरता रहता है। मरुस्थल में 90-95 प्रतिशत वर्षा मानसून के रूप में जून और सितम्बर के मध्य होती है, हालांकि अक्टूबर तथा शरद ऋतु में भी कभी-कभी हल्की बौछारें मरुस्थल में होती है। अधिकतम वर्षा (300-500 मि.मी.) अरावली के तटीय क्षेत्र, कच्छ तथा दक्षिणी-पश्चिमी सौराष्ट्र में होती है, जबकि पश्चिमी राजस्थान में वर्षा 200 से 360 मि.मी. प्रतिवर्ष से अधिक नहीं हो पाती है। सम्पूर्ण मरुस्थल में सापेक्षिक आर्द्रता वर्षा ऋतु में 75-90 प्रतिशत तथा शरद ऋतु में 40-60 प्रतिशत रहती है। अधिकतम आर्द्रता प्रातःकाल के समय तथा न्यूनतम दोपहर के बाद होती है।

राजस्थान में वनस्पति विविधता पूरे भारत की वनस्पति की तुलना में बहुत कम है। इनमें 1911 जातियाँ 780 वंशों और 154 कुलों के अंतर्गत हैं। जिनमें 63 पादप प्रजाति विलुप्त प्रायः है जिनका संरक्षण करना आवश्यक है। भारत की 33 प्रतिशत स्थानिक जातियों में से 3 प्रतिशत जातियाँ (44) इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। ये संख्या में कम या लुप्त प्रायः है। मनुष्य की निरन्तर आवश्यकता बढ़ने जैसे ईंधन के लिए लकड़ी, तेल प्राप्त करने के लिए बीजों का उपयोग, गोंद प्राप्त करना, इत्यादि उपयोग के कारण पौधों की निरन्तर कटाई की जा रही है जिससे कुछ प्रजातियाँ विलुप्त प्रायः स्थिति में आ गई हैं। सरगुड़ा भी इनमें से एक प्रजाति है।

सरगुड़ा वृक्ष

यह मौरिगेसी कुल का वृक्ष है। जिसका वानस्पतिक नाम *मौरिंगा कोन्कानेन्सिस* है। विश्व में इसकी कुल 34 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इनमें से भारत में 3 तथा राजस्थान में 2 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इनमें से एक सरगुड़ा है जोकि मुख्यतः पहाड़ी या पठारी क्षेत्रों में इक्की-दुक्की जगहों पर पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ द्विपिच्छकी

तथा फूल में दल पर लाल धारी होती है। इसकी फली की लंबाई 29.11 से.मी., चौड़ाई 1.73 से.मी. तथा बीज की औसत लंबाई 9.76 से.मी., चौड़ाई 8.28 मि.मी., एवं बीज का भार 0.13 ग्राम है। इसमें 10-15 बीज होते हैं। जो जानवर चाव से खाते हैं।

सरगुड़ा के विलुप्त होने के कारण

इसके विलुप्त होने के निम्न कारण हैं—

- बीजों को भेड़ व बकरियों द्वारा खाने से प्रकृति में बीज की कमी से नए पौधे कम पैदा होते हैं।
- बकरी, मोर, गिलहरी तथा अन्य जीवों एवं पक्षियों द्वारा शिशु पौधे को नुकसान के कारण पौधे मर जाते हैं।
- अत्यधिक तापमान परिवर्तन होने के कारण भी पौधे मर जाते हैं।
- पहाड़ों पर गर्मी में पानी की उपलब्धता न होने के कारण से भी इनकी मृत्यु दर अधिक है।
- पुराने पेड़ की छाल को छिलकर दवाई के लिए उपयोग में लेने के कारण से इसका घनत्व कम होता है।
- जैविक दबाव, असुरक्षित आवास एवं वातावरणीय कारकों के कारण से इसका घनत्व कम होता है।

सरगुड़ा के संरक्षण हेतु किए गए प्रयास

इसके संरक्षण हेतु निम्न प्रयास किए गए हैं —

1. बाड़मेर से बीजों का संग्रहण किया गया।
2. बीजों के फलियों से गिरने से पहले ही एकत्र कर छाया में सुखाया गया।
3. दो तरीकों से (अ) नारियल जूट में (ब) मिट्टी व गोबर खाद के मिश्रण में बीजों को रोपित किया गया।
4. इनमें 7-8 दिनों में 100 प्रतिशत अंकुरण पाया।
5. नारियल जूट में अंकुरित पौधों की लंबाई मिट्टी व गोबर खाद मिश्रण की तुलना में ज्यादा मिली।
6. 5 दिन बाद मिट्टी व गोबर खाद के मिश्रण वाली पोलीथीन थैली में स्थानांतरित करके छायादार स्थान पर रखा।
7. लगभग 6-12 माह के पौधों (80 सेमी ऊँचाई) को थैलियों से निकाल कर भूमि में रोपा गया।



सरगुड़ा पादप: अ-पेड़, ब-फूल व कली, स-छाल का दवाई में उपयोग
द-बाड़मेर के विरात्रा माता मन्दिर के संरक्षित क्षेत्र में सरगुड़ा

8. स्थानांतरित करते समय जड़ को नुकसान नहीं होना चाहिए वरना पौधा मर सकता है।
9. नए अंकुरित पौधों एवं भूमि में रोपित पौधों के पत्ते मोर, गिलहरी, बकरी एवं तोतों के लिए स्वादिष्ट भोजन है, अतः इनको बचाने हेतु इसको लोहे की जाली से संरक्षित करना आवश्यक है। अत्यधिक गर्मी में इसके पत्ते झड़ जाते हैं, पौधा निर्जीव दिखता है लेकिन यह जीवित होता है एवं वर्षा काल में पुनः प्रस्फुटित होकर तेजी से वृद्धि करता है तथा डेढ़ वर्ष में अधिकतम 135 से.मी. की ऊँचाई एवं जड़ बन्ध पर व्यास डेढ़ से.मी. हो जाता है।

सरगुड़ा का आर्थिक महत्व

सरगुड़ा के आर्थिक महत्व निम्न है—

- इसकी पत्तियाँ पौष्टिक चारा है।
- पौधे के विभिन्न भागों जैसे छाल, गोंद, फल, फूल, बीज और बीज तेल इत्यादि का उपयोग विभिन्न बीमारियों (सूजन, हृदय, जठरांत्र) में होता है।
- पत्तियों में विटामीन 'ए' व 'सी' पाया जाता है।
- बीज का तेल खाने के रूप में भी उपयोगी है। लगातार तले जाने के उपरान्त में इनमें रासायनिक बदलाव नहीं होते हैं। अतः इसको खेती की मेड़ या शस्य वानिकी में उगाकर भी इसका संरक्षण व संवर्धन किया जा सकता है।



हिन्दी खेतों-खलिहानों में पली है, सारे देश के तीर्थ स्थान में खेली है, राज सिंहासन की अपेक्षा जनता के सिंहासन पर बैठी है। प्रेम, राष्ट्र-सेवा व कुर्बानी के उसने गीत गाए हैं। हिन्दी को हिन्दुस्तान की प्रतिध्वनि बनाना पड़ेगा।

— महादेवी वर्मा

जीरा सफाई एवं श्रेणीकरण मशीन का विकास

पुरुषोत्तम शर्मा, पी.के. मालवीय, हरपाल सिंह एवं दिनेश मिश्रा
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर-342 003

सारांश

जीरा उत्पादक कास्तकारों के लिये जीरा सफाई एवं श्रेणीकरण मशीन को विकसित किया गया है। इससे जीरे की फसल का मूल्य संवर्धन किया जा सकता है। यह एक विद्युत चलित मशीन है, जो जीरे से मिट्टी, पत्थर, धूल एवं भूसा साफ करती है, एवं जीरे को दो श्रेणियों में वर्गीकृत भी करती है। इससे उपयुक्त अर्थात् श्रेणीकृत तथा नगदी माल ही यातायात द्वारा बाजार में भेजा जा सकता है। तब परिवहन व्यय कम होता है और सफाई एवं श्रेणीयुक्त जीरा होने के कारण उसका अधिक मूल्य प्राप्त होता है।

यह मशीन एकल फेस की दो अश्वशक्ति वाली विद्युत मोटर से चलाई जाती है। इस मशीन की कार्य क्षमता 250 से 300 कि.ग्रा. प्रति घण्टा है, एवं इसकी दक्षता 75 प्रतिशत है। इस मशीन की कुल लागत मात्र 30000/- रुपये है।

इस मशीन में इनकी जालियों को आवश्यकतानुसार अर्थात् बीजों की संरचनानुसार बदल कर अन्य फसलों (दलहन, तिलहन, बाजरा आदि) की भी सफाई एवं श्रेणीकरण किया जा सकता है।

प्रस्तावना

विश्व के कुल जीरा उत्पादन में भारत का योगदान 70 से 75 प्रतिशत है, तथा अन्य देशों— सीरिया, तुर्की, ईरान, चीन में भी जीरा का उत्पादन होता है। वर्ष 2009 में भारत का जीरा उत्पादन 150000 मीट्रिक टन रहा, जो विश्व उत्पादन का 73 प्रतिशत है।

देश के जीरा उत्पादन में राजस्थान प्रदेश की 50 से 60 प्रतिशत हिस्सेदारी है। इस राज्य में कुल 321201 हैक्टेयर में जीरे की फसल लगाई जाती है। उसका कुल उत्पादन 70478 मीट्रिक टन है। यह फसल प्रमुख रूप से पश्चिमी राजस्थान के विभिन्न जिलों में लगाई जाती है।

पश्चिमी राजस्थान के जीरा उत्पादन का प्रमुख भाग गुजरात राज्य की मण्डियों से बेचा जाता है। गुजरात की मण्डियों से देश के कुल जीरे उत्पादन का 85 से 90 प्रतिशत हिस्सा बेचा जाता है। गुजरात राज्य की जीरा बेचान की मुख्य मण्डी ऊँझा में

है। इन मण्डियों में इस जीरे का तुलनात्मक मूल्य कम आंका जाता है। उसके प्रमुख कारण है -

- जीरे की फसल में मिट्टी, पत्थर अधिक होना।
- उसमें उंटल आदि होना।
- जीरे की सफाई का अभाव होना।
- जीरे का श्रेणीकरण न होने के कारण बड़े एवं छोटे आकार के जीरे का संमिश्रण होना।

इन्ही प्रमुख कारणों के कारण जीरे के मूल्य प्राप्ति में ह्रास होता है। इन बड़ी मण्डियों के खरीदार, इस प्रकार की जीरा फसल को खरीदकर उन्हीं मण्डियों में इसकी उचित सफाई करवाते हैं। इसके लिये "हस्त चलित छलनी" एवं पखें का उपयोग करवाते हैं। तथा बड़े जो खरीदार हैं वे - "घोड़ी छलनी" का प्रयोग करवाते हैं। इसमें तीन-चार श्रमिकों द्वारा यह कार्य होता है। इससे औसतन 100 से 150 कि.ग्रा. प्रति घण्टा सफाई कार्य होता है। इस सफाई कार्य से लगभग 6 से 12 प्रतिशत अनुपयोगी पदार्थ निकाले जाते हैं। कभी-कभी यह आंकड़ा 15 से 20 प्रतिशत तक भी चला जाता है।

कास्तकार यदि स्वयं इसकी सफाई एवं छँटाई करवा कर इस जीरा फसल को मण्डियों में लाते हैं, तब इन्हें (1.) यातायात अर्थात् खेत से मण्डी तक फसल उत्पाद को ले जाने के लिये कम व्यय करना पड़ेगा (2.) सफाई एवं श्रेणी युक्त होने के कारण उन्हें उचित तथा अधिक मूल्य प्राप्त होगा।

इन्हीं उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते करते हुए, इस प्रकार की जीरा सफाई एवं श्रेणीकरण मशीन को विकसित किया गया है।

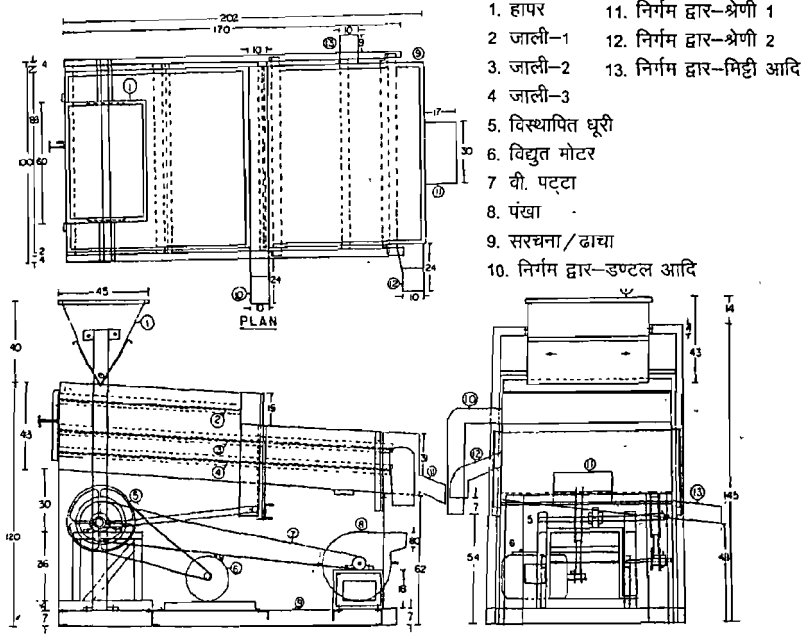
संरचना

यह जीरा सफाई एवं श्रेणीकरण मशीन प्रमुख रूप से पाँच अवयवों द्वारा निर्मित है।

1. हापर
2. ढाँचा
3. विभिन्न प्रकार की जालियाँ
4. हवा फँकने वाला पंखा
5. विद्युत मोटर

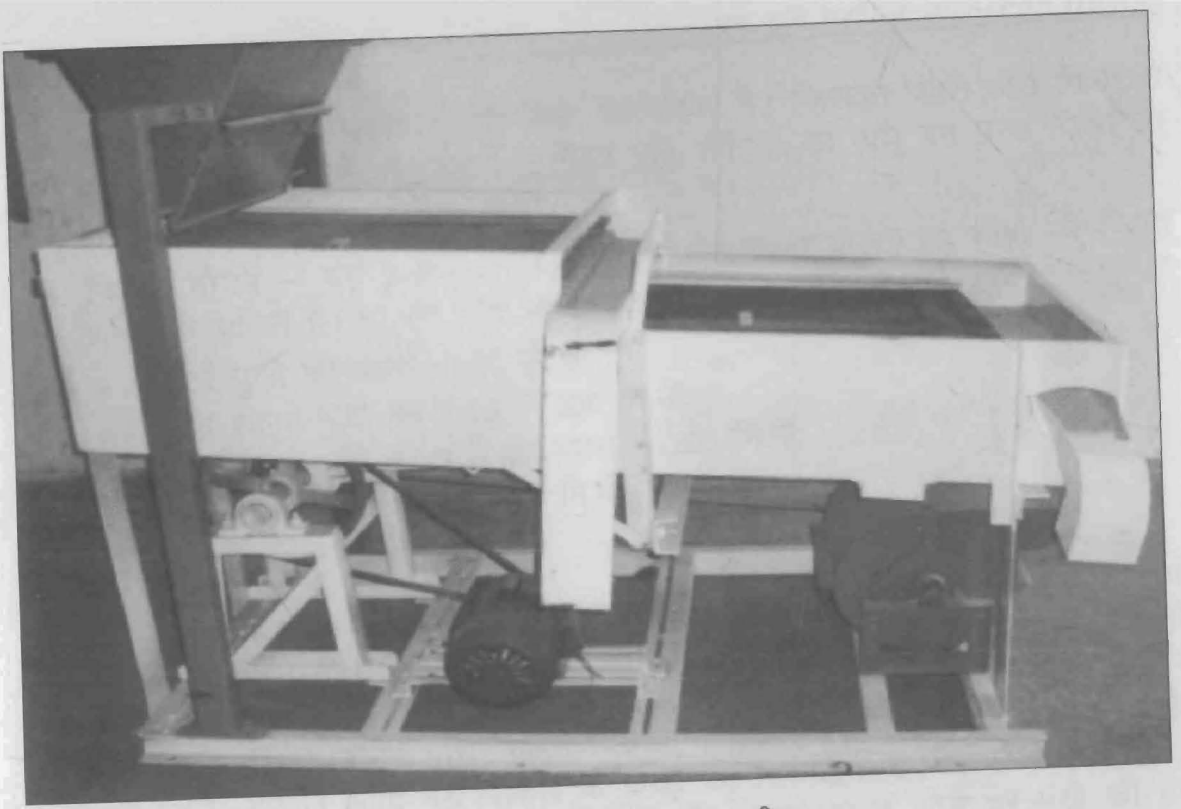
इस मशीन के विभिन्न भागों का तकनीकी विवरण निम्न प्रकार है :-

1. **हापर:** यह इस्पात का बना त्रिगुणात्मक एवं नीचे की तरफ संकरा हुआ हुआ पैदा है। इसकी भरण क्षमता 25 कि.ग्रा. है एवं परिमाण (लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई) क्रमशः 60, 45, 40 से.मी. है।



रेखाचित्र - जीरा सफाई एवं श्रेणीकरण मशीन

2. **ढाँचा:** यह लोहे के एँगल से बना ढाँचा है। इसका बाहरी परिमाण (लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई) में क्रमशः 2020, 1000, 1600 मि.मी. है।
3. **विभिन्न प्रकार की जालियाँ:** इस मशीन में तीन प्रकार-की इस्पात निर्मित जालियों का प्रयोग हुआ है। इन जालियों को लकड़ी के फ्रेम में लगाकर एक लोहे के डिब्बे के आकार में समायोजित किया गया है।
- प्रथम जाली - यह 5 मि.मी. व्यास के छिद्रों से युक्त है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई क्रमशः 750, 800 मि.मी. है। इसका छिद्र युक्त प्रभावित क्षेत्र 50 प्रतिशत है।
 - द्वितीय जाली - यह आयताकार छिद्रों से युक्त है। उसकी (लम्बाई-चौड़ाई) 20, 2 मि.मी. है। इस जाली की लम्बाई-चौड़ाई क्रमशः 1500, 800 मि.मी. है। इसका छिद्र युक्त प्रभावित क्षेत्र 35 प्रतिशत है।
 - तृतीय जाली - यह 1 मि.मी. व्यास के छिद्रों से युक्त है। इसकी (लम्बाई-चौड़ाई) क्रमशः 1500, 800 मि.मी. है। इसका छिद्र प्रभावित क्षेत्र 28 प्रतिशत है।



जीरा सफाई एवं श्रेणीकरण मशीन



जीरा सफाई एवं श्रेणीकरण मशीन की कार्य प्रणाली

4. हवा फौकनें वाला पंखा — यह पंखा बेलनाकार है। जिसका व्यास 350 मि.मी. है एवं लम्बाई 330 मि.मी. हैं। इससे 5 मीटर प्रति सैकेण्ड का वायु वेग प्राप्त किया जा सकता है।
5. विद्युत मोटर — यह 2 अश्वशक्ति की एकलफेस (220 वोल्ट, 50 चक्र) की विद्युत शक्ति से चलित है। इसकी गति 1440 चक्र प्रति मिनट है।
 - मोटर पुली का व्यास — 50 मि.मी.
 - मुख्य शाफ्ट पुली का व्यास — 300 मि.मी.
 - मुख्य शाफ्ट पंखे की पुली का व्यास — 200 मि.मी.
 - पंखे की पुली का व्यास — 75 मि.मी.

कार्य प्रणाली

इस मशीन में हापार द्वारा जीरे को जालियों पर डाला जाता है। इन जालियों का प्रकार विभिन्न किस्मों वाले जीरे के आकारानुसार है। उसी अनुरूपता में जीरे की सफाई एवं श्रेणीकरण होता है। यह जालियाँ पाश्चात्यगति से चलती है। ये पाश्चात्य गति, विद्युत मोटर द्वारा चलित विस्थापित धूरी चक्र से प्राप्त की जा जाती है। पहली जाली डण्टल आदि बड़े आकार के कचरे को निकालती है। अन्य दो जालियों से श्रेणी एक एवं श्रेणी दो का जीरा बाहर आता है। इसके बाहर आने पर पंखे की हवा द्वारा उसमें घासफूस एवं टूटे हुए बीज कणों को अलग ढेरी के रूप में एकत्रित कर देती है।

कार्यक्षमता एवं दक्षता का मूल्यांकन

मशीन की कार्यक्षमता का परीक्षण करने के लिये 50 कि.ग्रा. जीरा लिया गया। उसमें से एक श्रेणी का जीरा 42 कि.ग्रा. प्राप्त हुआ। द्वितीय श्रेणी का जीरा 6 कि.ग्रा. प्राप्त हुआ तथा डण्टल पत्थर आदि 2 कि.ग्रा. प्राप्त हुए।

इस मशीन की जाली प्रभावित क्षेत्र 78 प्रतिशत है तथा सफाई सूचकांक 0.93 है। इस प्रकार से मशीन की दक्षता 75 प्रतिशत प्राप्त की गई।

विशेषतायें

1. इस मशीन को सूचारु रूप से चलाने के लिये 120-150 वर्गफुट के क्षेत्रफल की आवश्यकता होती है।
2. एक कुशल मजदूर द्वारा इसे चलाया जा सकता है।
3. यह मशीन 2 अश्वशक्ति, एकलफेस विद्युत से कार्यरत है।
4. इस मशीन की कार्य दक्षता 75 प्रतिशत है।
5. इस मशीन की कार्यक्षमता 300 कि.ग्रा. प्रति घण्टा है।

6. इस मशीन द्वारा सफाई एवं श्रेणीकृत किया उत्पाद की कीमत 20 से 30 प्रतिशत अधिक प्राप्त की जा सकती है।
7. इस मशीन की जालियों को बदलकर अन्य फसलों की भी सफाई की जा सकती हैं।
8. इस मशीन को व्यक्तिगत किसान, कृषि प्रसंस्करण केन्द्र एवं ग्राम पंचायतों पर लगाया जा सकता है।



“दया का पात्र है वह राष्ट्र, जिसके निवासी वह वस्त्र नहीं पहन पाते जो उनकी मातृभूमि में तैयार किया जाता है। उससे अधिक दया का पात्र, वह राष्ट्र, जिसके निवासी वह अन्न ग्रहण नहीं करते जो उनके ही देश की भूमि में उगा कर तैयार किया जाता है परन्तु सबसे अधिक दया का पात्र वह राष्ट्र है, जिसके निवासी अपने देश की राष्ट्रभाषा नहीं बोलते।”

— खलिल जिब्रान

कश्मीर की शीतोष्ण परिस्थितियों में रेशम उत्पादन के लिए मृदा और खनिजों का प्रबंधन

एम. एस. राठौड़, वाय. श्रीनिवासुलु, आर. कौर, अनिल धर एवं
एम.ए. खान

केन्द्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, केन्द्रीय रेशम बोर्ड,
गालान्दर, पाम्पोर - 192121, कश्मीर

सार

इस लेख में मृदा परीक्षण एवं मृदा में मौजूद खनिजों की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है यह दोनों ही घटक उच्च गुणवत्ता पूर्ण पत्ती एवं पौधे के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। वर्तमान स्थिति में जो भी कृषक इस व्यवसाय से जुड़े वे लोग इन दोनों ही महत्वपूर्ण घटकों के उपयुक्त प्रबंधन और प्रयोग के प्रति सजग नहीं हैं फलस्वरूप उनका उत्पादन अपेक्षा अनुरूप नहीं हो पाता है। पौधे के सामान्य परीक्षण से ही उसमें मौजूद खनिज घटकों की कमी का पता लगाया जा सकता है तथा आवश्यक मिट्टी परीक्षण कर आवश्यक मात्रा की पूर्ति की जा सकती है। इस प्रकार से वैज्ञानिक तरीका अपनाकर कृषक अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत कर सकता है साथ ही देश के रेशम उद्योग की आन्तरिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है तथा आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ा सकता है।

कुंजी शब्द: शहतूत, शीतोष्ण, रेशम, सूक्ष्म व स्थूल तत्व

प्रस्तावना

रेशम सदियों से वस्त्र के रूप में प्रचलित रहा है। यह रेशम युग-युगान्तर से पूजा में पुजारी के वस्त्र के रूप में काम लिये जाते रहे हैं। पूर्व में राजा महाराजा इसी के बने वस्त्र पहनते आए हैं। रेशम कोमलता का प्रतीक है। इसकी सुन्दरता मन भावन होती है। इन सब कारणों से इसे "वस्त्रों की रानी" की संज्ञा मिली है।

वर्तमान में विश्व का सर्वाधिक रेशम उत्पादन चीन में होता है। 'रेशम पथ' रेशम उत्पादन की प्रगति के साथ चीन से भारत होते हुए तुर्की की ओर जाता है जो कि एशिया महाद्वीप की एक आकर्षक नीति है। विश्व के रेशम उत्पादन के लिए, वैज्ञानिक दृष्टि से कभी जापान सर्वाधिक लोकप्रिय था। जहाँ की गुणात्मक रेशम विश्व प्रसिद्ध थी किंतु अब वहाँ दूसरे व्यवसायों को प्राथमिकता मिल रही है। जिस कारण वहाँ रेशम

उत्पादन में कमी आयी है। समय के परिवर्तन के साथ रेशम का उत्पादन परम्परागत देशों से हटकर नये देशों में हो रहा है। जिसमें एशिया में श्रीलंका व बांग्लादेश भी विगत वर्षों में शामिल हो गये है।

भारत में रेशम उत्पादन भले ही विगत पाँच हजार वर्ष पुरानी बात है पर व्यावसायिक तौर पर 18 वी शताब्दी से कर्नाटक राज्य शहतूती रेशम में भारत का नेतृत्व करता आ रहा है। भारत में 5 राज्यों को पारम्परिक रेशम उत्पादक राज्य माना जाता है, इसमें मुख्यतः कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडू, पश्चिमी बंगाल और जम्मू व कश्मीर आते है। शहतूत एक बहुवर्षीय पेड़ है जिसको रेशम कीट पालन के लिए झाड़ीनुमा से लेकर वृक्षानुमाकार में बनाया जाता है। शहतूत की उच्चकोटि की गुणवत्ता वाले पत्ता उत्पादन के लिए इसकी वर्ष में दो बार कटाई-छँटाई की जाती है। पूरे उत्तर भारत में रेशम कीट पालन एक सहयोगी व्यवसाय है जबकि कृषि एक पूर्णकालीन रोजगार है।

जम्मू कश्मीर एक पारंपरिक रेशम उत्पादक राज्य है (मीर एवं अन्य, 2008)। कश्मीर वादी शीतोष्ण प्रदेश को प्रस्तुत करता है। साथ ही यहाँ की द्विप्रज रेशम उत्पादन के लिए एकदम उपयुक्त है। प्रदेश में रेशम उत्पादन एक व्यवसाय ही नहीं यहाँ के लोगो की भावनाओं से भी जुड़ा है। कश्मीर में रेशम उत्पादन मुख्यतः शहतूत के वृक्ष पर निर्भर है (धर एवं अन्य, 1989)। यहाँ शहतूत का पेड़ नदी किनारे, सड़क किनारे एवं खेतों की बाड़ पर पाया जाता है (राठौड़ एवं अन्य, 2010)। इस परिस्थिति में उर्वरक का इस्तेमाल करना अत्यन्त ही कठिन काम है। कई जगहों पर किसानों एवं व्यवसायिक स्तर पर शहतूत के बागों को स्थापित किया गया है। जहाँ पर मिट्टी की गुणवत्ता पर ध्यान नहीं दिया जाता है, फलस्वरूप पत्ती की गुणवत्ता में कमी आती है, एवं इसका रेशम उत्पादन में गहरा असर पड़ता है। मिट्टी के परीक्षण के दौरान मिट्टी में उपस्थित पौधों के पौषक तत्वों का समुचित प्रबंधन संभव है (सिंघवी एवं अन्य, 2000)। विभिन्न मृदा विकारों को दूर करने के तथा उर्वरकों का सही प्रयोग करने के लिए मिट्टी परीक्षण अत्यन्त आवश्यक है। फसलों की लाभकारी उपज लेने तथा बाग लगाने के लिए मिट्टी परीक्षण विशेष रूप से लाभदायक है।

पत्ती की गुणवत्ता मिट्टी में मौजूद पौषक तत्वों की मात्रा पर निर्भर करती है (वॉलेस, 1943)। उपयुक्त मात्रा में यदि पौषक तत्व मौजूद होंगे तो पत्ती की गुणवत्ता में भी सुधार होगा, एवं रेशम का उत्पादन भी बढ़ेगा (शास्त्री, 1986)। मिट्टी में उपयुक्त मात्रा में पौषक तत्व मौजूद है कि नहीं इसका पता लगाने के लिए मिट्टी का परीक्षण करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए मिट्टी के नमूने संग्रहित करने पड़ते हैं।

इस लेख में मिट्टी के नमूने सही तरह से एकत्र करने एवं शहतूत की पत्ती में दिखाई देने वाले विभिन्न पौषक तत्वों की कमी के लक्षणों का पता लगाने की विधि पर प्रकाश डाला गया है।

मिट्टी परीक्षण के मुख्य लाभ

- विभिन्न विकारों जैसे अम्लीयता, लवणीयता, क्षारीयता तथा प्रदूषण आदि का पता लगाना तथा सुधार के उपायों के सुझाव देना।
- मिट्टी की उपजाऊ शक्ति का पता लगाना तथा उसी के अनुसार खाद व उर्वरक की मात्रा की सिफारिश करना।
- मिट्टी की उपजाऊ शक्ति के मानचित्र बनाना तथा उसी आधार पर क्षेत्र विशेष में मिट्टी की उपजाऊ शक्ति में समय के साथ-साथ होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना और उर्वरक वितरण में मार्गदर्शन करना।

मिट्टी का नमूना लेने की उपयुक्त विधि

भू-भाग का सबसे पहले निरीक्षण करके उसे ढलान, मिट्टी के रंग तथा आकार के अनुसार उचित भागों में बाँट ले। इसके बाद प्रत्येक भाग में टेढ़े-मेढ़े चलते हुए 10-20 नमूने एकत्रित करें। प्रत्येक भू-भाग का आकार एक एकड़ से अधिक न रखें ऊपरी सतह से नमूना लेने के लिए खुर्पी या ट्यूब ऑगर, अधिक गहराई से या गीली मिट्टी से नमूना लेने के लिए पोस्ट होल ऑगर तथा सख्त मिट्टी से नमूना लेने के लिए के लिए स्क्रू ऑगर का प्रयोग करें। खुर्पी की सहायता से भी मिट्टी का नमूना एकत्रित किया जा सकता है। वृक्षों के आकार के अनुसार 0-30, 30-60, तथा 60 से 90 से.मी. तक के अलग-अलग नमूने एकत्रित करें। एक खेत या भाग से लिए गये सभी नमूनों को साफ सतह पर रखकर खूब अच्छी तरह मिला लें, पूरी मात्रा को एकसमान मोटाई में बिछा ले तथा उसे चार भागों में बराबर बाँट ले आगे-आगे वाले दो भागों को हटा दें शेष बचे हुए दो भागों को मिला लें। यह क्रिया जब तक दोहराते रहे जब तक आधा कि.ग्रा. मात्रा शेष रह जाये। अब एकत्रित किये गये नमूने को एक साफ थैली में रखकर उस पर उचित नामांकरण कर दें। साथ ही कागज पर अलग से यही विवरण लिख कर थैली के अंदर रख दें। यदि मिट्टी में नमी हो तो उसे छाया में सुखाकर थैली में रख दें, नमूनों को दो-तीन दिन में ही प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए भेज दें।

एकत्रित किया गया नमूना बाग का प्रतिनिधि होता है। रंग, ढलान उपजाऊ क्षमता की दृष्टि से भिन्न लगने वाले भागों से अलग-अलग नमूने ले, प्रयोग में लिये जाने वाले औजार थैलियाँ आदि बिल्कुल साफ होने चाहिए। नमूनों को दवाईयों, खाद, उर्वरक के सम्पर्क में न आने दें। नमूना लेते समय वहाँ पर पडे कूड़ा, खरपतवार एवं गोबर इत्यादि को हटा दें। शहतूत के प्रत्यारोपण करने एवं खाद व उर्वरक के प्रयोग से पहले मिट्टी का परीक्षण करायें।

मिट्टी परीक्षण कराने के लिए देश के प्रत्येक जिले में प्रयोगशाला है इसके अलावा निकटतम मृदा परीक्षण केन्द्र पर जाकर भी मिट्टी परीक्षण कराय जा सकता है। कुछ परीक्षणों के लिए मिट्टी परीक्षण किट का प्रयोग किया जा सकता है किंतु इससे

सीमित जानकारी ही मिल पाती है पूरी जानकारी और अधिक लाभ के लिये मृदा परीक्षण प्रयोगशाला से ही संपर्क करना चाहिए।

अजैविक कारकों का गुणवत्ता पर प्रभाव

रेशम उत्पादन का सीधा संबंध पत्ती की गुणवत्ता से है। शहतूत की पत्ती की गुणवत्ता पर न केवल जैविक बल्कि अजैविक घटक भी प्रभाव डालते हैं। खनिज की कमी या अधिकता का शहतूत की गुणवत्ता पर गहरा असर देखने को मिलता है। लगभग 17 ऐसे खनिज तत्व हैं जो पौधे के विकास के अत्यंत आवश्यक हैं। इनको दो भागों में बाँटा गया है।

- **स्थूल तत्व (मैक्रो न्यूट्रियेंट):** इन तत्वों की शहतूत के पौधे को अधिक मात्रा में जरूरत होती है इसमें कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, और सल्फर आदि प्रमुख हैं। इन तत्वों की कमी या अधिकता से पौधे की आन्तरिक क्रियाओं पर प्रतिकूल असर पड़ता है एवं पौधे के जीवन चक्र पर प्रतिकूल असर देखने को मिलता है।
- **सूक्ष्म तत्व (माइक्रो न्यूट्रियेंट):** यह तत्व सूक्ष्म मात्रा में पौधे के विकास के लिए आवश्यक होते हैं प्रायः इसकी मात्रा पी.पी.एम. में मापी जाती है। इन तत्वों में प्रमुख रूप से आयरन, क्लोरीन, मैग्नीज, जिंक, बॉरोन, कॉपर, निकल, एवं मॉलीब्डेनम है। कम मात्रा में आवश्यकता होने के बावजूद भी यह पौधों की आंतरिक संरचना को प्रभावित कर देती है।

अतः उपरोक्त दोनों प्रकार के तत्वों का संतुलित प्रयोग एवं प्रबंधन करना आवश्यक है जिससे पत्ती की गुणवत्ता और उत्पादन पर अनुकूल असर हो।

संदर्भ

- अनिल धर, पी.सी. बोस., के.एल. धर और एम.एम. हसन. (1989). मलबरी कल्टीवेशन ऑन दी सायल्स ऑफ कश्मीर वैली, इंडियन फार्मिंग। सितंबर, पृष्ठ 13।
- एम.आर. मीर, आर. कौर, अनिल धर, हरून रशीद और एम.ए. खान (2008). इन्फ्यूलेन्स ऑफ सेनेसेन्स ऑन दी ग्रोथ एण्ड यील्ड पेरामीटरस ऑफ मलबरी अन्डर टेम्परेट कन्डीशन्स। सेरीकोलोजिया: 48 (2), 193-194.
- एम.एस. राठौड़, वाय. श्रीनिवासुलू, आफताब ए. शबनम, आर. कौर, अनिल धर, एम.ए. खान (2010). क्रायोप्रिजरवेशन ऑफ ईलाइट टेम्प्रेजरेट मलबरी जर्मप्लाज्म। करेंट साइंस, खण्ड 99, संख्या 5, 10 सितंबर, पृष्ठ 557.
- के.एस. कृष्णा शास्त्री (1986). प्लांट न्यूट्रीटेशन एण्ड प्रोडक्टिविटी इन सिल्क इण्डस्ट्री। इन लेक्चर ऑन सेरीकल्चर। बोरेह, जी (ईडी.), सुरम्या पब्लिकेशन, बैंगलौर, इंडिया। पी.पी. 29-31.

- एन.आर. सिंघवी, एम.एम. रेड्डी, एस. चक्रवर्ती, एम. रेखा, ए. सरकार और आर. के. दत्ता (2000). लीफ न्यूट्रेन्ट स्टेटस् ऑफ ए फ्यू पॉपुलर मलबरी वेरायटीज। इंडियन ज. सेरी., 39(1): 93-96.
- टी. वॉलेस (1943). दी डायग्नोसिस ऑफ मिनरल डिफीसिन्सीस इन प्लांट्स वाय विसवल सिम्पटमस। पब्लिस्ड बाय हिज मेजेस्टीस स्टेशनरी ऑफिस, लंदन.

★★★

किसी भाषा के शब्दों को अपना लेने में शर्म की कोई बात नहीं है। शर्म तो तब है, जब हम अपनी भाषा के प्रचलित शब्दों को न जानने के कारण दूसरी भाषा के शब्दों का प्रयोग करें जैसे घर शब्द को भुलाकर 'हाउस' कहें, माता को 'मदर' कहें, पिता को 'फादर' कहें, पति को 'हसबैंड' और पत्नी को 'वाइफ' कहें।

— महात्मा गाँधी

काजरी समाचार-2010

काजरी में फल प्रदर्शनी आयोजित

काजरी में 16.01.2011 को फल प्रदर्शनी एवं किसान गोष्ठी का आयोजित किया गया। गोष्ठी में मुख्य अतिथि राष्ट्रीय बीज एवं फसल अनुसंधान केन्द्र अजमेर के निदेशक डॉ. एम.एम. अनवर व अध्यक्षता काजरी के तत्कालीन निदेशक (कार्यवाहक) डॉ. एन.वी. पाटिल ने की। आयोजक डॉ. पी.आर. मेघवाल ने बेर, अनार, आँवला के फलों की किस्म एवं उत्पादन विधियों की जानकारी दी।

पशुपालन प्रशिक्षण आयोजित

2 फरवरी से काजरी में आठ दिवसीय पशुपालन प्रशिक्षण आयोजित किया गया जिसमें कई राज्यों से आये पशु चिकित्सक व अधिकारियों ने भाग लिया। पाठ्यक्रम समन्वयक डॉ. बी.के. माथुर ने पशुपालन एवं प्रबंधन की तकनीकी जानकारी दी।

काजरी मे किसान मेला आयोजित

काजरी में 25 फरवरी को काजरी मौसम विज्ञान कृषि सलाहकार सेवा केन्द्र एवं भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के संयुक्त तत्वाधान में किसान मेले का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि काजरी निदेशक डॉ. एम.एम. रॉय तथा विशिष्ट अतिथि भारतीय मौसम विज्ञान विभाग, जयपुर के निदेशक डॉ. आर.सी. गुप्ता रहे।

डॉ. स्वामीनाथन का काजरी भ्रमण

राज्यसभा सदस्य व हरित क्रान्ति के प्रणेता कृषि वैज्ञानिक प्रो. एम.एस. स्वामीनाथन ने काजरी भ्रमण किया तथा काजरी वैज्ञानिकों को सम्बोधित किया। डॉ. स्वामीनाथन ने प्रयोगशाला एवं खेत के अंतराल को कम करने की आवश्यकता प्रतिपादित की। डॉ. स्वामीनाथन ने काजरी को राष्ट्रीय संस्थान का दर्जा देने की बात कही तथा काजरी के शोध कार्यों की सराहना की।

काजरी में महिला दिवस आयोजित

8 मार्च को काजरी में महिला दिवस आयोजित किया गया। कार्यक्रम के अन्तर्गत संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता डॉ. एम.एम. रॉय, निदेशक, काजरी ने की। डॉ. पटिल, डॉ. (श्रीमती) अंजली पंचोली, श्रीमती मधुबाला चारण, शकुन्तला मेहता आदि ने अपने विचार व्यक्त किये।



डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन काजरी की तकनीकियों का अवलोकन करते हुए



इथोपियन दल को काजरी तकनीकियों की जानकारी देते वैज्ञानिक

दलहन दिवस आयोजित

1 मई को काजरी में मरू दलहन दिवस आयोजित किया गया। इस अवसर पर एक सेमिनार आयोजित की गई जिसकी अध्यक्षता करते काजरी निदेशक डॉ. एम.एम. रॉय ने कहा कि काजरी की तकनीकें अपनाकर किसान अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। डॉ. डी. कुमार ने गर्मी व कम पानी की स्थिति में दलहन फसलों के उगने व अधिक उपज प्राप्त करने की तकनीकी जानकारी दी।

जैव विविधता दिवस पर संगोष्ठी आयोजित

22 मई को जैव विविधता दिवस पर काजरी में संगोष्ठी आयोजित की गई। डॉ. एम.एम. रॉय ने जैव विविधता संरक्षण का आव्हान किया। डॉ. सुरेश कुमार ने जैव विविधता का महत्त्व व जैव विविधता के ह्रास के बारे में जानकारी दी।

ईथोपिया के कृषि अधिकारी काजरी तकनीक से रूबरू

काजरी द्वारा विकसित नवीनतम तकनीकों से रूबरू होने के लिए कृषि एवं ग्रामीण विकास मंत्रालय ईथोपिया के दल ने काजरी शोध-क्षेत्रों का भ्रमण किया। संस्थान सभागार में काजरी वैज्ञानिकों एवं ईथोपिया दल के बीच विचार-विमर्श का आयोजन हुआ। कार्यक्रम प्रबंधक सस्टेनेबल भूमि प्रबंध ईथोपिया के वैज्ञानिक डेनियल डेनार्ड ने कहा कि यहाँ की तकनीकियाँ काफी अच्छी हैं व इन्हें ईथोपिया में अपनाया जा सकता है।

क्षेत्र दिवस का आयोजन

कृषि विज्ञान केन्द्र काजरी द्वारा 8 सितम्बर को आगोलाई गाँव में खरीफ फसलों पर क्षेत्र दिवस का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. अमलकर ने किसानों को नवीनतम तकनीकों का लाभ लेने का आग्रह किया।

हिन्दी सप्ताह का आयोजन

14-19 सितम्बर को काजरी में हिन्दी सप्ताह का आयोजन किया गया जिसमें विभिन्न प्रतियोगिताएँ हिन्दी निबन्ध, प्रार्थना-पत्र लेखन, व्याख्यान, विवज आदि आयोजित किये गये। उद्घाटन कार्यक्रम के मुख्य अतिथि मण्डल रेल प्रबंधक एवं नगर राजभाषा समिति के अध्यक्ष श्री जी.सी. अग्रवाल तथा विशिष्ट अतिथि, हिन्दी विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय के प्रो. एस.के. मीणा थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए काजरी निदेशक डॉ. एम.एम. रॉय ने हिन्दी में अधिकाधिक शोध-पत्र प्रकाशित करने पर बल दिया।

उप महानिदेशक डॉ. ए.के. सिंह का काजरी भ्रमण

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के उप महानिदेशक डॉ. ए.के. सिंह ने 19-20 सितम्बर को काजरी परिसर का भ्रमण किया व काजरी के शोध कार्यों का जायजा लिया।

खेलकूद प्रतियोगिताएँ

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की अन्तर्देशीय खेलकूद प्रतियोगिताएँ 9 से 13 अक्टूबर 2010 को आयोजित हुईं जिसमें भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों के लगभग 300 खिलाड़ियों ने भाग लिया। उद्घाटन 9.11.2010 को गौशाला खेल मैदान में रक्षा प्रयोगशाला के निदेशक ने किया तथा निदेशक काजरी डॉ. एम.एम. राँय ने अध्यक्षता की।

काजरी में किसान मेला आयोजित

काजरी में 29 सितम्बर को किसान मेला आयोजित किया गया। मेले का उद्घाटन आफरी निदेशक डॉ. त्रिलोक सिंह राठौड़ ने किया। मेले में जोधपुर के आसपास के 500 किसानों ने भाग लिया। किसानों को काजरी तकनीकों से रूबरू करवाया गया।

काजरी स्थापना दिवस आयोजित

काजरी में 1 अक्टूबर को स्थापना दिवस आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में उत्कृष्ट कार्य के लिए अधिकारियों एवं कर्मचारियों को सम्मानित किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर के कुलपति प्रो. नवीन माथुर थे एवं कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. एम.एम. राँय निदेशक काजरी ने की।

पुरस्कार एवं सम्मान समाचार

- डॉ. हरपाल सिंह, डॉ. ए.के. सिंह और एच.के. कुशवाहा को IASE टीम अवार्ड 30 जनवरी 2010 को प्राप्त हुआ।
- डॉ. सत्यवीर, प्रधान वैज्ञानिक (कीट विज्ञान) को श्रीमती कावेरी शारदा में मेमोरियल अवार्ड हैदराबाद में मार्च 2010 को भारतीय पौध रक्षण संस्थान द्वारा दिया गया।
- डॉ. आर.एस. मेड़तिया को 15-17 मार्च, 2010 को आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय खजूर कांफ्रेंस, आबू धाबी, यू.ए.ई. में खलीफा अन्तर्राष्ट्रीय खजूर पुरस्कार से नवाजा गया।



काजरी में आयोजित किसान संगोष्ठी की अध्यक्षता करते डॉ. एम.एम. राँय, निदेशक काजरी एवं डॉ. त्रिलोकसिंह राठौड़, निदेशक आफरी



किसानों को सम्बोधित करते डॉ. एम.एम. राँय, निदेशक काजरी

